गायक को मुखरित वीणा जब
गाती है मृदु-राग निरन्तर--
अपने उर की व्याकुलता को
उस वीणा में तू भरता क्यों?

जीवन का चिर-अमर सत्य जो--
पाना था पा लिया प्रेम में
अपने में ही देख उसे रे--
इधर-उधर भ्रम में फिरता क्यों।

१९३६

❀ ❀ ❀

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

गीत

मेरा छोटा-सा उर-उपवन।
जिसमें रहता मधुमास सदा,
करते मृदु-भाव विहग कूजन।

कामना कली ले विश्वप्यार,
करती फिरती सौरभ-प्रसार;
जिसकी सुख-सुखमा का प्रतिपल,
भावुक जग करता अभिनन्दन।

श्वासों का मलयानिल बहता,
धीरे से कानों में कहता;
"तुम चिर अनन्त के रूप सुनो--
करते प्राणों के अलि गुंजन"।
जब मैं ही जग का आदि-अन्त,
मेरी स्वर्गिक निधियाँ अनन्त;
क्यों आज भूल मैं अपनापन,
विस्मित-सा बैठूं बन उन्मन।

१९३६

❀ ❀ ❀

श्री सरदार नर्मदाप्रसाद सिंह

मिलन

(१)

अनुराग विराग की प्यारी सखी,
किसी ध्यान में लिप्त सुषुप्त-सी थी।
करुणा-सर के हिय-अम्बुज में,
मकरंद-सी राजित गुप्त-सी थी॥
जिमि नीर निमग्न समीर रहे,
तिमि वेदना-वारि में सिक्त-सी थी।
अणिमा-सी सुपीर की सुस्मृति थी,
मम चेतना से सदा लुप्त-सी थी॥

(२)

इस वेदना में व्यथा थी ही नहीं,
मृदु मोद की तोप की भावना थी।
प्रतिघात का अन्तरभाव न था,
अवसान अभूत की साधना थी॥
तम भी था निराशा का व्याप्त नहीं,
चिर ज्योति अखंड-सी वासना थी।
प्रणै-मंत्र से हो अभिमंत्रित-सी,
मृदुल-स्मृति-पीर अराधना थी॥

(३)

डर एक ही था कभी आवें न वे,
अरु वेदना-मर्म न पूछें कहीं।
जिनसे ही प्रदत्त हो सम्पति जो,
उनसे ही भला छिपती है कहीं॥
अनबेधे सुडौल दो मोतियों को,
सब सूचक भेद अचानक ही।
हिय-सिन्धु से लोलुप लोचन ले,
उनके पद-कंज धरें न कहीं॥

(४)

इसी अंतसताप से त्रासित था,
तभी आये बताये बिना वे यहीं।
पट-कोमल ही के छिपा न सके,
करुणा-सर से सरिता उमही॥
चट लोचन लोयन लों आ लगी,
पुनि प्यारे पदों पै पगी जा वहीं।
हम चित्र से ठाढ़े रहे सहसा,
मुख से निकला हाँ नहीं हाँ नहीं॥

(५)

इसी हाँ नहीं के मधि गर्व बहा,
चिर संचित सम्पति कोष बहा।
बही वेदना की मृदुलस्मृति भी,
अरु साधना-साधक-तोष बहा॥
बही आशा, निराशा का धूम्र बहा,
अपमान बहा, अरु रोष बहा।
जब नेत्र से आसव प्रेम बहा,
बस! वे भी बहे, मैं बेहोश बहा॥

१९३६

❀ ❀ ❀

श्री राजनाथ पाण्डेय एम० ए०

बिदा

'प्रान-जीवन-धन'! रहो सानंद तुम हम जा रहे हैं—
नेह का अंकुर हृदय में नाथ जो तुमने उगाया,
क्रूर इस संसार में वह फूलने-फलने न पाया।
चाह छाया कल्प-तरु की थी, नियति पर और ही थी,
लाख धीरज, धर्म, संयम से नहीं सन्तोष आया॥
आज अपने पग समेटे हम यहाँ से जा रहे हैं।
एक तुम थे छूटता है नाथ! अब वह भी सहारा,
रैन है अति ही अँधेरी दूर सागर का किनारा।
याद अपनी, आपकी, संसार की भी आ रही है,
है अकेले पार जाना हिल रहा दिल है हमारा॥
आँसुओं से राह अपनी हम भिगोते जा रहे हैं।
दो क्षणों का साथ सुख-दुख में भले ही हो हमारा,
कौन किसका है जगत् में कौन किसका है सहारा।
प्रेम कर संसार में फिर क्या किसी ने चैन पाया?
मैं अकेला ही नहीं, इस राह में संसार हारा॥
हार में भी जीत अपनी हम समझते जा रहे हैं।

१९३६

❀ ❀ ❀

श्री कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह

गीत

आकर्षणमय विश्व तुम्हारा !
मज्जित इस छवि के समुद्र में
मिलता नहीं किनारा।

जलद-वेश्म सुरधनु-आरंजित
ऊपर नील-व्योम शशि-शोभित,
क्रीड़ित सतत अनन्त अंक में
किरण-कान्त कल तारा।

ऊर्मिल जलधि-केश उर्वी-उर
लहराता तम-वास असित-तर,
स्वप्न-विभोर निशीथ-शयन पर,
वह सरि-धारा——हारा।
मद-मरन्द-मूर्च्छित कलि के दृग,
बहता मलय मन्द गन्ध-स्रग,
ए अरूप, चिर अभिनव तेरी
रूपमयी यह कारा।

१९३७

❀ ❀ ❀

श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी एम० ए०

उदय-अस्त

है प्रथम बिलोड़न किसने,
मातरिश्वनि में उपजाया ?
गति दी किसने इस जग को,
कब कम्पन इसे सिखाया ?
आकर्षण की निधि कब से,
इस दृश्य जगत ने पाई ?
यह मिलन-प्रक्षिपण-लीला,
गति में कब अगति समाई ?
इस मूक सृष्टि के भीतर,
चेतन चेता, रेंगा कब ?
बोला कब किससे कैसे,
सोचा समझा बूझा कब ?

इस प्रखर-ज्वाल-माला को
किसने कब प्रसव किया है ?
इस शीतल कन्दुक को कब
किसने आलोक दिया है ?

फेंका किसने कब इनको,
कब तक आएँ-जाएँगे ?
किस ओर कहाँ सूने में,
निश्चेष्ट शान्ति पायेंगे ?
है प्रथम बीज उपजाया,
अथवा कि वृक्ष पहले हैं ?
है अन्धकार पहले का,
अथवा प्रकाश पहले है ?
पहले उगना मिटना या
है क्या निसर्ग ने पाया ?
पहले विकास को अथवा,
पहले विनाश अपनाया ?

× × ×

जब कहीं 'नहीं' सब कुछ था,
तब 'हाँ' सोचा है जिसने,
इस सारे प्रलय स्रजन की,
है विधि बैठाई उसने॥

'आरम्भ'-'अन्त' का विस्मय--
कौतूहल चेतनता का।
यह 'अब' का 'तब' का सम्भ्रम--
धोखा है मानवता का॥

है 'उदय' 'अस्त' के भीतर;
है 'अस्त' 'उदय' का लेखा।
यह द्वैतभाव मर्त्यों का;
अमरों की सीधी रेखा॥

१९३७

❀ ❀ ❀

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

उच्छ्वास

आज धड़क उठता है हियतल किस पीड़न से प्रतिपल।
आज न जाने किस ज्वाला से उठता हूँ मैं जल जल॥
आज धड़क उठती है धकधक बल्लरियों की छाती।
हलकी हलकी मलय पवन विस्मरण-रागिनी गाती॥
आज न पूछो क्यों रह रहकर जी निकला जाता है।
कौन हृदय में रक्तचिता-सी धूनी धधकाता है॥
'आज मुझे तुम भूल चली हो' कसक कसक में मर्मर।
काँप रहा हिल्लोलित जीवन क्षुब्ध जलधि-सा थरथर॥
कितने मधु दिन आये होंगे तुमसे मुझे भुलाने।
कितनी मोती की बरसातें कनक मेघ अनजाने॥
कितने सावन उड़ते आये मुझको भूल चलीं तब।
प्रलयाकुल हो डोल उमड़ती प्यास वही पगली अब॥

कितने दक्षिण अनिल फुल्ल द्राक्षावन में हो डोले।
धानी मंजरियों में कितने शरद विकल हो बोले॥
कितने उल्कापात हुए तब मैं प्राणों में टूटा।
कितने झंझावात नियति ने खो यह दीपक लूटा॥
किन्तु यहाँ आकुल अन्तस्तल प्रलय विसर्जन तल-सा।
ले अगणित तूफान उमड़ता विन्दु विन्दु उर प्यासा॥
तरस उठे ये सूने लोचन उसी नीर से रोते।
एक इसी आहत उर में शत शत भूकम्पन होते॥
प्राणों की पुष्पाकुल मादक मधुता आज सुलगती।
यह जीवन की मन्द मन्द गति कैसी दुर्वह लगती॥
अब न रुकेंगे पीड़ित प्यासे प्राण! सुदूर गई तुम।
कैसी बन्धन की ममता जब मुझको भूल चलीं तुम॥

१९३७

❀ ❀ ❀

श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

मूक माँग

हा! मेरे सुख का वह लघु पल क्यों इन्द्रधनुष-सा बन आता!
मैं निरख न जी भर भी पाती वह मिट क्षण भर में ही जाता!
तम-निभृत-व्योम पर नीरव वह
जो तेजपुञ्ज-सा खिल उठता।
मैं उसे न चुम्बित कर सकती,
वह हाय! मुझे कितना छलता।

पर कितना मादक है प्रिय का पल भर का यह अज्ञात मिलन!
कितना मधुमय सुखप्रद है रे, यह चिर वियोग यह अचिर मिलन!
कितना प्रिय है रोते दृग में,
उनका सपना बनकर आना।
मेरे सोते उच्छ्वासों को,
सपनों मिस आ बिखरा जाना।

मेरे लघु सपने के जग में वे मुग्ध हँसी बन कर आवें।
यह मेरी जीवन-रजनी के खो स्वप्न न पल भर में जावें।
मानस-पट पर वह नित आवें,
पलकों पर सरसिज पग धरके।
मैं हृदय-नीड़ में छिपा रखूँ,
वह कुहुक उठें कलरव करके।

छाया-से दूर देश से आ कुछ झूठी याद दिला जावें।
क्षण भर उर में हँस बस कर वे मीठी वेदना जगा जावें।
छलकें पलकों की सीपी में,
बनकर वे सपनों के मोती।
मैं भर लूँ रीता हृदय-कोष,
मेरी यह निधि न कभी खोती।

मेरे आँचल से सपनों की माया जब हो लुट जाने को!
निज चरणों की रेखा अंकित कर दें धीरज बँधवाने को!
यदि फूलों-से हँसते आवें।
प्राणों में सौरभ बस जावे।
यदि मधुर राग बन वे आवें,
झंकार भरी तो रह जावे!

१९३८

❀ ❀ ❀

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

नाविक

नाविक, अभी सवेरा है,
तरी खोल झट; कह, वह तट भी पहचाना क्या तेरा है?
तय करनी है कितनी दूरी?
खे लेने की ताकत पूरी?
तब ले चल; हाँ, अतल सलिल का रहता डर बहुतेरा है?

सभी ओर दिखता कुहरा ही,
तू बैठा ज्यों थककर राही,
सुनता हूँ—उस ओर सभी का होता रैन-बसेरा है!
नाविक, अभी सवेरा है।

१९३८

❀ ❀ ❀

श्री नर्मदाप्रसाद खरे

मिलन

मैं विजन का फूल सुन्दर।
विजन में ही झर रहा हूँ, एक सुखमय साध लेकर॥

फूल कर मोहक हुआ था, प्रेममयि! तुमको रिझाने;
वायु में सन्देश भेजे, मानिनी! तुमको बुलाने,—
मिलन की मनुहार ले अब, बिछ रहा हूँ प्रेम-पथ पर॥मैं०—
प्रात आता प्यार लेकर, साँझ नव अनुराग लाती,
इन्दु पलकें चूमता है, चाँदनी मुझको सुलाती;
पर प्रतीक्षा में खड़ा हूँ, लोचनों में नीर भर-भर॥मैं०—

सिन्धु से मिलने सदा-सी, आज सरिता जा रही है,
एक नव सन्देश लेकर, आज बुलबुल गा रही है;—
'चिर-विरह ही चिर-मिलन है' गूंजता सब ओर यह स्वर।
मैं विजन का फूल सुन्दर॥

१९३८

❀ ❀ ❀

श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'

मेरे पावन, मेरे पुनीत !

जब नैश-प्रकृति के अंचल में,
मुसका उठते हो मन्द मन्द।
हो जाता है क्षण भर मुखरित,
मेरा अलसित, जीवन, अमंद।
करते हो आँख-मिचौनी-सी,
दृग-द्वार खोल, कर पुनः बंद।
बज उठता है निस्पंद पड़ी मेरी वीणा का विरह-गीत ॥
मेरे पावन, मेरे पुनीत !

जब चूम चूम लेते हो तुम,
वारिधि के दृग की मदिर कोर।
लहरा उठता है बेसुध-सा,
छल छपक-छपक, हिल-हिल हिलोर।
देते तुम अपने अधरों को,
उसके नव-मधु में बोर बोर।
तब अपनेपन में बेसुध-सा, मैं खो देता हूँ हार, जीत ॥
मेरे पावन, मेरे पुनीत !

जब सज मुक्ता-मालाओं से,
कर उठते हो झिलमिल-झिलमिल।
चाँदी के साँपों-सी अस्थिर-
रश्मियाँ विरल रिलमिल-रिलमिल।
करते हो कुछ संकेत-मात्र,
अगणित दृग-सैनों से हिलमिल।
जग-सा जाता है क्षण भर को, विस्मृति में सोया-सा अतीत ॥
मेरे पावन, मेरे पुनीत !

जब ऊषा के वातायन से,
तुम देखा करते उझक झाँक।
जग तृण-तरु पर, मृदु कुसुमों पर,
लेता सुन्दर छवि आँक आँक।
हो जाता है भू पर विलसित,
कल्पित स्वप्नों का स्वर्णनाक।
अनजाने में हो जाते हैं मेरे कुछ क्षण सुख से व्यतीत ॥
मेरे पावन, मेरे पुनीत !

१९३९

❀ ❀ ❀

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

(१) कलिका से; कलिका की ओर से

क्यों मुसका दीं बोलो आली !
जाड़ा है, रात अँधेरी है, सन्नाटा है, जग सोया है,
फिर यह काँटों की टहनी है, कैसे मुसका उट्ठीं आली ?

क्यों तुम्हें रात में दीख रहा ?
तुम योगी हो ? अथवा उलूक ?
क्यों हास्य बिखरता है, बोलो
कर कर मृदु सम्पुट टूक टूक ?

क्यों आँख खोल दी ? क्या अपना जग,
फूला फूला-सा दीखा ?
क्या मुँदी आँख में, यह सपना जग
भूला भूला-सा दीखा

क्या इन पत्तों ने जगा दिया,
फर फर कर करके सूने में?
क्या फर फर में पुकार सुन ली
जागना छू लिया छूने में?
क्या कहूँ साँसवाले जग को?
जो निशिदिन सो सो जगता है?
क्यों मेरा जगना एक बार भी,
इसे अनोखा लगता है?
मेरा जगना, मेरा हँसना
जग-जीवन का उल्लास कहाँ?
मैं हँसूँ मुँदूँ मनचाही-सी
विधि का मुझ पर विश्वास कहाँ!
तुम हँसते हो चुप हो होकर
चुप होकर मुसका जाते हो?
मैं हँसी, कि कैसे पाप हुआ?
क्यों प्रश्न पूछने आते हो?
कोमल रवि-किरणें आती हैं
वे मुझे ढूँढ़ती घूम घूम।
अपने बिजली से ओठों से,
मेरा मुँह लेती चूम चूम!
क्या कहूँ हवा से, यह सौतिन,
चुप धीमे धीमे आती है—
फिर मुझे हिलाती हौले से,
मेरी आँखें खुल जाती हैं।
पत्रों का, इन मदमत्तों का
वह झूम झूम कर गा देना,
कुछ कभी ताल-सी दे देना,
कुछ यों चुटकियाँ बजा देना!
पंखों से हवा में जग न उठे
यों ठण्डी मेरी आग कहाँ?
मेरा मीठापन बह न उठे
वह काबू का अनुराग कहाँ?
डूबते हुए इन तारों से
बोलूँ तो क्या बोलूँ आली!

इनकी समाधियों पर मेरी मुसकान?—
——कौन थाती पाली?
तेरा हँसना वह हँसना है,
जिससे मेरा उद्धार नहीं,
मेरा हँसना वह हँसना है
जिस पर टिक पाया प्यार नहीं।
मेरा हँसना वह हँसना है,
जीने का जो एतबार नहीं!
मेरे हँसने में मानव-सा,
पापी विधि हुआ उदार नहीं।
जग आँख मूँद कर मरता है
मैं आँख खोल कर मरती हूँ!
मेरी सुन्दरता तो देखो,
मरने के लिए उभरती हूँ!!
रवि की किरनों को तो देखो,
वे जगा विश्व-व्यापार, चलीं!
मेरी किस्मत!——
वे ही मुझको यों हँसा हँसा कर मार चलीं!
मैं जगी कि जैसे मीठा-सा,
प्रिय का कोई सन्देह जगा!
मधु बहा कि जैसे सन्तों का,
धीमे धीमे सन्देश जगा!
मैंने हाँ वर भी पाया,
—मैं जिसकी गोदी में बड़ी हुई,
जिसका रस पी, मधु-गन्धमयी,
खिल-खिल कर ऊँची खड़ी हुई।
आई बहार, मैं उसके ही चरणों पर नत हो,
झुकी सखी!
फिर जी की एक एक पंखुड़ि, उस पर बलि
मैं कर चुकी सखी!
मैं बलि का गान सुनाती हूँ
प्रभु के पथ की बन कर फकीर
माँ पर हँस-हँस बलि होने में,
खिंच,———हरी रहे मेरी लकीर॥

१९३९

(२) बीन और संगीन

सहज साँस क्यों व्याल सा जग रहा है!
सुखी-स्वप्न अब बोझ-सा लग रहा है।
महल उठ रहे, झोपड़ी खो गई है,
कि ईमान ईमान को ठग रहा है।
बहारें थमीं क्यों गगन भेद खोले,
लहर से कहो दौड़ कर देख तो ले।

गगन है, कहाँ हैं चपल पाँख मेरे?
कहाँ हैं सखा, सूझ गुस्ताख मेरे?
कहो किस दिशा में लुटा है सबेरा?
कि संकल्प किसने किये राख मेरे?
पथिक से कहो, सीस गंगा उठाये,
प्रकृति को पिये, चाँदनी में नहाये॥

उठा लायँ, उट्ठो, गगन से चुराकर,
अँधेरा उजेला बराबर बराबर।
प्रजातन्त्र है, प्राण हैं कोटि मेरे,
चलो प्राण-प्रतिमा निरख लें सजा कर।
जहाँ आज मीड़ों में संगीन बोले,
वहीं गोद में गूँजती बीन बोले!

१९५५

❀ ❀ ❀

पं० सोहनलाल द्विवेदी

(१) उठ उठ री मानस की उमंग!

उठ उठ री मानस की उमंग! भर जीवन में नव रूप रंग

फूटे तरु में नव-नव पल्लव
ले शत शत रंगों का वैभव
कोमल कलियों का नव उद्‌भव
लाया मादक सौरभ तरंग
उठ उठ री मानस की उमंग!

वे इन्द्रधनुष-से पंख खोल
नभ में पंछी करते किलोल
उड़ चले क्षितिज पर डोल-डोल
लेने जीवन संबल सुरंग
उठ उठ री मानस की उमंग!

फैला किरणों का अरुण जाल
बरसा तृण पल्लव पर गुलाल
रँग उठी धरा यह लाल लाल
पुलकित होकर गाते विहंग
उठ उठ री मानस की उमंग!

सरसों में उठती लोल लहर
छा जाती दोनों कूल छहर
कल-कल छल-छल कर प्रहर-प्रहर
गमकाती जीवन को मृदंग
उठ उठ री मानस की उमंग!

नीलम दूर्वा पर ये हिमकण
लगते--मानो बरसा कंचन
हँसते, खिलते रह रह तृण-तृण
जीवन-धन का मिल गया संग
उठ उठ री मानस की उमंग !

सरिता अपनी धुन में बहती
गुप चुप सुख-दुख गाथा कहती
धारा में कितनी गति रहती ?
होता धीवर का धैर्य भंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

सामने खड़ा जो शैल अचल
योगी-सा आसन में अविचल
दृढ़ता में कितनी गुरुता, बल ?
नीलांबर तक छू रहा शृंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

मृदु सुमन खोल अन्तस के दल
बन बन बिखेरते हैं परिमल
मधु-गन्ध भार आकुल दिशि पल,
छूते प्राणों के तार भृंग
उठ उठ री मानस की उमंग !

कोयल विटपी पर रही बोल
प्राणों में अमृत घोल घोल,
पगली, तू भी मृदु कंठ खोल,
गा री, नवजीवन के प्रसंग
उठ उठ री मानस की उमंग !
गा नवजीवन के नव प्रसंग भर जीवन में नव रूप रंग !

१९३९

(२) श्रद्धांजलि

जिसके बल पर, उठे-बढ़े हम, हमने रण-हुंकार किया।
जिसके बल पर, जिये मरे हम, सौ सौ संकट पार किया।
जिसके बल पर, विजय-मुकुट ले जननी का शृंगार किया!
जिसके बल पर, हो स्वतंत्र, मानवता का उद्धार किया !
वही क्रान्ति की मूर्ति, शान्ति की स्फूर्ति, सुदृढ़ पतवार गया
गया सत्य का तेज, अहिंसा का उज्ज्वल अवतार गया !
अधम! तुझे क्या मिला आज ले करके जान महात्मा की;
खंड खंड हो धरा ! धैर्य अब तू किसके बल पर पाती !
वह गोली, घातक प्रहार है लगा न आज महात्मा को,
आज दैत्य ने ललकारा है, हम सबके परमात्मा को !
आह ! आत्महंता ! ले आ, उठ रही आज है वह आंधी,
एक नहीं, चालिस करोड़ सामने खड़े तेरे गाँधी,
जो गाँधी ने कहा--उसी की तिल तिल पूर्ति करेंगे हम,
आज राष्ट्र के कण-कण को गाँधी की मूर्ति करेंगे हम ॥

१९४८

❀ ❀ ❀

श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

सम्बोधन

निष्ठुर जग के निर्मम मन रे !
उर-उपवन है कुसुमित पुलकित,
वरदान मिला अभिमत अभिमित;
प्रिय चातक में, प्रिय में चातक लय होगा घिर आये घन रे !
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे !!
ले देख, प्रणय की मृदु-वेला,
मृदु-मृदु हृदयों का मधु-मेला;
प्रिय प्रियतम के जो बीच रहा उठता है वह अवगुण्ठन रे !
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे !
अभिशाप न एक फला तेरा,
जीवन-प्रभात है यह मेरा;
प्राणों में प्रियतम मुसकाता, तू देख इसे पाहन बन रे !
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे !

१९४०

श्री जितेन्द्रकुमार

गीत

मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!
आज सूने लोचनों में—
स्वप्न की संसृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!

पूर्णिमा वह चिर -पुरातन,
आज उतरी उर-क्षितिज पर
गहन तम-संकुल अमा बन
इस अँधेरे में प्रभा की—

क्षीण-धुँधली स्मृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!!
उर - निकुञ्जों में मनोहर,
गूँज कर नीरव हुई जो

प्रेम की वंशी निमिष - भर
आज मानस में उसी की
मैं सजल, झंकृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!!

१९४०

❀ ❀ ❀

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

पपीहा, 'पी कहाँ' ना बोल

पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

टेर रहा तू जीवन-धन को,
नवल-सजीले-श्यामल घन को,
पीड़ा-सी छाये उर नभ पर वे, अन्तर-पट खोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

संचित रख यह विरह-वेदना,
प्रिय-सुहाग का सुन्दर सपना,
अर्पित करने को प्रिय-पद पर ये मोती अनमोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

उच्छ्वासों की घटा हृदय पर—
घिरे, विकम्पित चंचु सभय पर—
मौन साधना कर रे पंछी! दुख से मुँह ना खोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

तेरी कठिन परीक्षा है यह,
पीर न, प्रीति-समीक्षा है यह,
हिले न चंचु याचना-हित, हो उच्च प्रेम का बोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

प्रीतम-रूप-भरी छबि पीकर,
रोम-रोम पुलकित, छक-छककर,
नयन मूँद प्रति मूक श्वास से पी की बोली बोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

'सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन है,'
कहते—मधु जीवन-कण-कण है,
तू इनके जीवन-मधु-घट में विष का कण ना घोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

१९४०

❀ ❀ ❀

श्री लहरी एम० ए०

उनके गीत

उनके गीतों को, मैं गा लूँ।
अपने उर का, उनके स्वर में, टूटा तार मिला लूँ।

दो तारों की बीन पुरानी,
कभी न अपना स्वर पहचानी,
वे छू गये उसी क्षण का स्वर
गूँज रहा बन जीवन-बानी;
उनके गुञ्जन को समेट,
मैं अपना राग बना लूँ।

प्राणों का यह तार अकेला,
है उनके स्पन्दन का मेला,
फिर भी क्यों उनके बिन लगती
सूनी, भरी भरी यह बेला।
भावराशि के विकल छंद में
आज अभाव बजा लूँ।

जीवन के झटकों-मिस प्रतिपल,
पीर भरे अटपट पथ पर चल,
गायक! तेरे अंगुलि-कम्पन,
उतर रहे बन राग-शिथिल छल।
उनकी छलनाओं की छबि से,
निज स्वर-भंग सजा लूँ।

हरियाले पावस के घन-घन,
मौन गीत के जैसे कनकन,
उनके ही अधरों से छन छन
बजें कि बरसें बूँदें बन बन।
कब से चाह रहा पल भर भी
जी पर इन्हें उतार चढ़ा लूँ।

खिलते जी के गीत कली के,
छिलते जी के गीत अली के
जलते जी के गीत चमकते
तम में इस जुगनू अवली के।
टूटा तार, राग बहुरंगी,
गा लूँ या कि लजा लूँ।

हे विश्वगान! मैं क्षुद्रप्राण,
मैं भग्न तार की भंग तान,
वे ही इसमें जो स्वर ला दें
बन लूँगा उनका एक गान।
फिर अपना लय, उनके स्वर में
अतल अगाध बना लूँ।

१९४०

❀ ❀ ❀

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

(१) आग फिर किसने लगा दी?

आज, आधी रात, सोई याद फिर किस ने जगा दी?
आग फिर किस ने लगा दी?

याद चाहे सो गई हो, किन्तु मैं सोया नहीं था।
कौन-सी है वह घड़ी, वह पल, कि जब रोया नहीं था?
ओ भगीरथ! देख! सुरसरि-धार फिर किस ने सुखा दी?
आग फिर किस ने लगा दी?

भार हूँ, बेजार हूँ, लाचार हूँ, बीमार हूँ मैं।
एक ढेरी राख की है, और पहरेदार हूँ मैं।
राख पर तो रेख थी, क्या सोचकर, किस ने मिटादी?
आग फिर किस ने लगा दी?

श्री जितेन्द्रकुमार

गीत

मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!
आज सूने लोचनों में—
स्वप्न की संसृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!

पूर्णिमा वह चिर -पुरातन,
आज उतरी उर-क्षितिज पर
गहन तम-संकुल अमा बन
इस अँधेरे में प्रभा की—

क्षीण-धुँधली स्मृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!!
उर - निकुञ्जों में मनोहर,
गूंज कर नीरव हुई जो

प्रेम की वंशी निमिष - भर
आज मानस में उसी की
मैं सजल, झंकृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!!

१९४०

❀ ❀ ❀

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

पपीहा, 'पी कहाँ' ना बोल

पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

टेर रहा तू जीवन-धन को,
नवल-सजीले-श्यामल घन को,
पीड़ा-सी छाये उर नभ पर वे, अन्तर-पट खोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

संचित रख यह विरह-वेदना,
प्रिय-सुहाग का सुन्दर सपना,
अर्पित करने को प्रिय-पद पर ये मोती अनमोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

उच्छ्वासों की घटा हृदय पर—
घिरे, विकम्पित चंचु सभय पर—
मौन साधना कर रे पंछी! दुख से मुँह ना खोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

तेरी कठिन परीक्षा है यह,
पीर न, प्रीति-समीक्षा है यह,
हिले न चंचु याचना-हित, हो उच्च प्रेम का बोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

प्रीतम-रूप-भरी छबि पीकर,
रोम-रोम पुलकित, छक-छककर,
नयन मूँद प्रति मूक श्वास से पी की बोली बोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

'सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन है,'
कहते—मधु जीवन-कण-कण है,
तू इनके जीवन-मधु-घट में विष का कण ना घोल!
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल!

१९४०

❀ ❀ ❀

श्री लहरी एम० ए०

उनके गीत

उनके गीतों को, मैं गा लूँ।
अपने उर का, उनके स्वर में, टूटा तार मिला लूँ।

दो तारों की बीन पुरानी,
कभी न अपना स्वर पहचानी,
वे छू गये उसी क्षण का स्वर
गूँज रहा बन जीवन-बानी;
उनके गुञ्जन को समेट,
मैं अपना राग बना लूँ।

प्राणों का यह तार अकेला,
है उनके स्पन्दन का मेला,
फिर भी क्यों उनके बिन लगती
सूनी, भरी भरी यह बेला।
भावराशि के विकल छंद में
आज अभाव बजा लूँ।

जीवन के झटकों-मिस प्रतिपल,
पीर भरे अटपट पथ पर चल,
गायक! तेरे अंगुलि-कम्पन,
उतर रहे बन राग-शिथिल छल।
उनकी छलनाओं की छबि से,
निज स्वर-भंग सजा लूँ।

हरियाले पावस के घन-घन,
मौन गीत के जैसे कनकन,
उनके ही अधरों से छन छन
बजें कि बरसें बूँदें बन बन।
कब से चाह रहा पल भर भी
जी पर इन्हें उतार चढ़ा लूँ।

खिलते जी के गीत कली के,
छिलते जी के गीत अली के
जलते जी के गीत चमकते
तम में इस जुगनू अवली के।
टूटा तार, राग बहुरंगी,
गा लूँ या कि लजा लूँ।

हे विश्वगान! मैं क्षुद्रप्राण,
मैं भग्न तार की भंग तान,
वे ही इसमें जो स्वर ला दें
बन लूँगा उनका एक गान।
फिर अपना लय, उनके स्वर में
अतल अगाध बना लूँ।

१९४०

❀ ❀ ❀

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

(१) आग फिर किसने लगा दी?

आज, आधी रात, सोई याद फिर किस ने जगा दी?
आग फिर किस ने लगा दी?

याद चाहे सो गई हो, किन्तु मैं सोया नहीं था।
कौन-सी है वह घड़ी, वह पल, कि जब रोया नहीं था?
ओ भगीरथ! देख! सुरसरि-धार फिर किस ने सुखा दी?
आग फिर किस ने लगा दी?

भार हूँ, बेजार हूँ, लाचार हूँ, बीमार हूँ मैं।
एक ढेरी राख की है, और पहरेदार हूँ मैं।
राख पर तो रेख थी, क्या सोचकर, किस ने मिटादी?
आग फिर किस ने लगा दी?

आह ! कैसे वक्त पर दुर्बल पतिंगा जल रहा है !
उर नहीं क्या गल रहा ? क्या मोम भी न पिघल रहा है ?
दिलजलों के देश में जड़ फूट की किस ने जमा दी ?
आग फिर किसने लगा दी ?

क्या कहूँ अब——नाव हूँ, माझी हूँ, या पतवार हूँ मैं !
होश इतना भी नहीं——इस पार या उस पार हूँ मैं।
चीर कर, उर शून्य का, 'मँझधार' की किस ने सदा दी ?
आग फिर किस ने लगा दी ?

१९४०

(२) तो तुम क्या करो, प्रिय ?

आज यदि कर लूँ तनिक उत्पात, तो तुम क्या करो, प्रिय ?
आज कह दूँ भेद की कुछ बात, तो तुम क्या करो, प्रिय ?
यह दिवस है, बहुत ऐसे दिवस आते ही रहे हैं।
नित्य नव-संदेह, नूतन विपत्ति लाते ही रहे हैं।
किन्तु, मैं इस दिवस को, कर सहज-ध्यान त्वदीय छवि का,
आज यदि कर दूँ मिलन की रात, तो तुम क्या करो, प्रिय ?
हृदय के अंतस्थ पट पर एक झांकी छा रही है।
और उन्मीलित दृगों की राह में यों आ रही है,

शान्ति है, एकान्त है, उद्दीप्त हैं दो पादुकाएँ——
आज यदि छू लूँ बढ़ा कर हाथ, तो तुम क्या करो, प्रिय ?
प्रेम के अतिरेक में, उन्माद की उन्मत्तता में।
या कि अपने को मिटाने की प्रबल उन्मुक्तता में।
ज्ञान मेरे, ध्यान मेरे, प्राण मेरे नाथ ! तुम को——
आज यदि कह दूँ जगत के नाथ, तो तुम क्या करो, प्रिय ?

१९५३

❀ ❀ ❀

श्री शमशेरबहादुर सिंह

आह्वान

मिल जाओ तुम उर से उरवर,
पावनतम कर साँस !
घुल जाओ तुम आत्मा में भर
मृदुतम अपना हास !
जीवन-सरिता का तुम वेग बनो,
गति-प्राण,
जीवन स्वर का कंपन,
लय-आह्वान !
धरो-धरो तुम मुझमें अपना रूप,
अमर प्रणय के मेरे योग अनूप
कातर आशा के तुम आँसू,
जलन हृदय की मूक, निशा की
सिहरन चुप-चुप, करुणा नभ की !—

आओ चुम्बन से प्रिय अंतिम
नश्वरता के ध्यान,
मेरे गत-आगत के मान !
उस छवि का मैं संगी, आत्मन्,
जिसमें मेरा सुध-बुध-ज्ञान !
उस उर-सागर का मैं मीन
जिसमें डूब असंख्य कलाधर
विश्व-वीचियों की विह्वलता
बनकर, आँक रहे चिर जीवन——
शाश्वत माया के आधीन,
युग-युग के ओ प्रेम-प्रवीण !
मेरा जीवन विलस उठा है
रक्तिम कल्पों के कानन में;

विरही जीवन विलस उठा है
मिलने को तुमसे कन-कन में!
भ्रम के तुहिन-कुहा से निखरा,
आतप धूप चूमकर बिखरा
मधुमय आशा के उपवन में!
स्वप्न-जगत् को नमस्कार कर

सत्य-प्रभा के चरण तुम्हारे
अपने प्राणों से पखारकर,
निद्रा में जगता जीवन हूँ—
केवल यह जपता प्रतिक्षण हूँ:—
आओ, सुन्दर! आओ, प्रियतम!
चिर-जीवन बन जाओ, प्रियतम।

१९४१

❀ ❀ ❀

श्री गुलाब

याद

आज वायु-झोंके-सी सहसा आई याद तुम्हारी!
सिहर उठे ये प्राण, तिमिर में आया जाने कौन
और चू पड़े दो उजले मोती गालों पर मौन।
हाहाकार कर उठा अनुभव कर अपनी लाचारी;
आज वायु-झोंके-सी सहसा आई याद तुम्हारी!

एक साथ आगये याद बीते सुख दुःख हजार
मानो कोई छेड़ भर गया तारों में झंकार?
नाच गई आँखों में कुछ तसवीरें प्यारी-प्यारी
आज वायु-झोंके-सी सहसा आई याद तुम्हारी!

वे न रहे, रह गई याद ही केवल उनकी साथ,
हृदय हमारा हाय पड़ गया हृदय-हीन के हाथ?
वे तो गये आज मेरे भी जाने की है बारी
आज वायु-झोंके-सी सहसा आई याद तुम्हारी!

१९४१

❀ ❀ ❀

श्री तेजनारायण काक एम० ए०

मेरे गान

कभी तो होगा स्वर्ण-विहान?
छोड़कर मेरे उर का नीड़
उड़ेंगे नभ में मेरे गान!
विहग-शावक-से मेरे गान!

अभी तो सघन अँधेरी रात,
अभी तो हैं ये अति लघुप्राण,
छिपाये बैठे रे लघु गात—
सघनतम से उर में भय मान!

नहीं इनके पंखों में शक्ति,
नहीं ये चपल, नहीं गतिमान,
नहीं रे उड़ने में अनुरक्ति,
नहीं इनको निज बल का ज्ञान।

चलेगा रे जब प्रात-समीर,
खिलेंगी जब कलियाँ छविखान,
हिलेगा भावों से उर-नीड़—
बनेंगे ये विद्युत्-गतिमान।

उड़ेंगे अपने पंख पसार
वृष्टि, आतप में भर अभिमान—
बसेंगे नभ के भी उस पार,
बड़े होंगे जब मेरे गान।
विहग-शावक-से मेरे गान!

१९४१

❀ ❀ ❀

श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय 'सत्य'

विषमता

पतन में सखे निहित उत्थान,
रुदन में भी है सकरुण गान।
निशा करती है स्वर्ण-विहान
दु:ख में सुख का होता भान ॥१॥
उठो तो झुकते मुकुट किरीट
झुको तो हँसता जग अनजान।
मुग्ध हो छलना के छल-छंद
खेलता क्यों मानव बलवान ॥२॥
जिन्हें समझे हम परम उदार,
व्यर्थ उनके मुख देखे म्लान।
क्षमा करने में सफल समर्थ
छिपा ली व्यंग्य भरी मुसकान ॥३॥
लिया गोता उछले कुछ दूर
आज मानस में करके स्नान।
दान देकर पाया अभिशाप
शाप में मिला हमें वरदान ॥४॥
घटित होता अघटित चुपचाप,
नियति का कैसा अनुसन्धान।
जिसे समझे हैं अपना आप
हमारा भी तो है भगवान् ॥५॥

१९४१

❀ ❀ ❀

श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय

चित्रकार

सात बजे दिन के
कलकत्ता के स्टेशन पर
एक चित्रकार
कुछ चित्र लिये झोले में
उतरा था
तीन बजे रात की गाड़ी से,
चिन्तित-सा, व्यस्त-सा, त्रस्त-सा,
भूला हुआ-सा कुछ,
भटका हुआ भावों में।
चित्र बेचने के लिए
एक धनी सज्जन के
द्वार पर आया--
और
बोला दरबान से कि
'भाई ओ जमादार!
कह दो यह सेठ जीसे
चित्रकार एक कुछ, चित्र दिखलाने को
आपसे मिलने का
इच्छुक है देर से।'
बोला दरबान--
'आप चन्दा माँगते हैं या कि
बाबू की गद्दी पर नौकरी हैं चाहते?
कल या अतरसों
किसी और समय आइयेगा;
सोये हैं सेठ जी, न उनको समय है अभी
उठने पर बोल दूँगा बाबू से कि
तुम, यानी
आपकी गद्दी पर नौकरी पाने को
गरीब एक आया है।'

चिन्तित कुछ चित्रकार कहने लगा--
'जमादार!
आज ही शाम को यहाँ से चला जाना मुझे,
कौन कहे कल और परसों की बात तब!'
'जाना चाहते हैं तो
बुलाया तुम्हें किसने था?
रास्ता पड़ा है; कौन रोकता है,
भैया जी!
जाइए न!
किसने यहाँ आपको बुलाया था?'
बहुत कुछ अनुनय और दीनता से
कहने पर
दया-सी दिखाता हुआ,
देसवाली जमादार
ले गया सेठ जी के सम्मुख
कलाकार जी को।
'आइए, कैसे बनाते हैं महाशय चित्र',
बोले यह सेठ जी,
'दिखाओ काम अपना कुछ।'
चित्र देखते ही कहा सेठ जी ने
खिन्न हो--
'हरे हरे! राम राम!
कैसे हैं तुम्हारे चित्र!
रंग है, न रूप है, न भाव है, न भाषा है;
कागज की छाती पर थोड़ी-सी
लकीरें खींच--
कहते हो चित्र हैं!'
मोल भी सुनूँ मैं जरा!
'साठ रुपये!'
'भंग के नशे में बात कहते हैं
आप,
या कि मस्तक में बाबू जी
विकार कुछ आया है?
पैसे में तीन-तीन चित्र बिकते हैं बड़े,
रंग से जिनके कि
आँखें चौंधियाती हैं।

जरीदार, टिकुली के, चमकते हैं वारनिश से
और फिर छपे हुए, उनकी विशेषता है;
आप तो हाथों से बनाते हैं
इतना ही;
कमरे में हमारे जो चार चित्र देखते हो
पूना कम्पनी के छपे
कीमत रुपैया तीन
फ़्रेम-सहित!
सुनते हैं और क्या समझते हैं आप कुछ?
फैशन में आज-कल फैशन के चित्र हों
हाथ से बने हैं ये तो
राम, राम, राधेश्याम!
आँखों के देखते जमाना ही पलट गया।'
बोले मुनीम जी--
'बाबू निकालो इन्हें
जान पड़ता है ये गांधी के
आदमी हैं।
छोड़कर मशीनों को
अपने ही हाथों से
रेजी के साथ-साथ
चित्र भी बनाते हैं।'
'नमस्कार, मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें।'
कहता हुआ चित्रकार
झोला लिये लौट चला।
और तब
पहुँचा
एक शिक्षित धनी के पास।
चित्रों को देखकर
मिस्टर पी-एच० डी० ने
क्रोध से भनककर कहा कि
क्या कहना है?
शर्म नहीं आती तुम्हें
कैसे अश्लील चित्र,
देखना भी पाप जिन्हें,
फेंक दो चित्र
ब्वाय बाहर निकालो इन्हें,

कैसे चरित्रहीन चित्रकार होते हैं!'
पहुँचा चित्रकार फिर
एक राय जी के पास,
रूपगढ़ के थे जो एक बड़े जमींदार,
यू० पी० के कमिश्नर, बहुत इन्हें मानते थे।
चित्र चित्रकार के देखकर प्रसन्न हुए,
कहने लगे--
'किन्तु कुछ सुन्दर नहीं हैं ये,
फीका-सा रंग
और रूप भी न मोहक है।
फूलदार साड़ी पर
सोने का लगाये क्लिप
मृग और मीन के समान
आँखोंवाली--
किसी युवकी का चित्र हो।
जिसके कपोलों का रूप देख भूल जाय
फूल भी अपनी सुगन्ध भरी कोमलता
दृश्य हो अच्छा कुछ चटकदार रंग हों
कीमत का प्रश्न नहीं
ले लें दो-चार चित्र
आपकी यह कृति अभी प्रथम प्रयास है।
धन्यवाद
फिर कभी आयें तो दर्शन दें
आज तो मुझको अनेक काम करने हैं।'
एक माननीया,
कन्या-कालेज की मिस्ट्रेस--
जिनके शुभ नाम के थे साथ में लगे हुए
अक्षर पाँच-सात अँगरेजी वर्णमाला के
शायद उपाधियाँ थीं
लन्दन और पैरिस की,
जनता में जिनकी
सुधारकों में गणना थी।
पहुँचा वह चित्रकार उनके भी द्वार पर
देखकर शिल्पी को
आदर से देवी जी
कहने लगीं, 'धन्य हो--
आइए श्रीमान्!
कैसे पधारे?
वह सेवा है कौन, जिसे करने के हेतु
आप देते हैं अवसर यह मुझ-सी
अकिंचन को?'
झोले के बाहर निकालकर चित्र कुछ
दिखलाये शिल्पी ने।
किन्तु हा खेद! उन्हें देखते ही
देवी जी
कहने लगीं--
'जानते हैं आप
यह बीसवीं शताब्दी है!
ऐसे भ्रष्ट चित्रण का मूल्य ही नहीं है कुछ;
राधा विराजती हैं
कृष्ण जी के चरणों में!
घोर अपमान है यह नारियों का
शेम, शेम,
आज भी नर को नहीं है ज्ञान
सभ्यता का,
केवल ये अबला समझते हैं देवियों को
पद-पद पर उनका जो तिरस्कार करते हैं!
किसी वीर बाला का चित्रण किया होता
झाँसी की रानी या दुर्गावतीदेवी को
चित्रित किया न जो कि
एक है उदाहरण गौरव का लोक में!
राधा के रूप में बनाया नत नारी को
कैसा है अनधिकार!
लज्जा की बात है।
जाइए कृपया उठाकर यह वितण्डावाद
चित्रों के नाम पर समाज की महत्ता को
करना कलंकित
क्या कला के प्रदर्शन का
यही उद्देश्य है?'
आफिस में पुनः एक पत्र-सम्पादक के

चित्र दिखलाये
उस दिन चित्रकार ने।
सम्पादक बोले कि 'ठीक है
महाशय जी!
आपकी सहायता है करना हमारा धर्म
पत्र में आपका चित्र छप जायगा
चाहें यदि पत्र की
एक प्रति ले लें आप,
डाक-व्यय सहित हम बिना मूल्य देंगे
जो कि
चित्र का है पुरस्कार!
इससे अधिक क्या
और कर सकते हैं?
इसका भी कारण यह,
आप हैं चित्रकार,
आपकी सहायता का
हमको विचार है।
अन्यथा बाध्य हैं
हम भी परिस्थिति से।
नमस्कार।
आपके चित्र कोई पब्लिशर
ले लेगा,
एक बार इसकी भी
ट्राई कर लीजिए'।
महामहोपाध्याय, कविरत्न, मार्तण्ड,
व्याख्यानवारिधि
श्री पब्लिशर जी के यहाँ
पहुँचकर चित्रकार
चित्र दिखलाने लगा।
किञ्चित् संकोच-सहित
कविरत्न कहने लगे——
'कवर डिजाइन की
चीज हो तो ले लेंगे
ब्लाक बन जाने पर
चित्र ले जाइएगा——
पुस्तक की एक प्रति
भेंट कर दूँगा मैं,
अनुचित उठाना लाभ
मुझको न रुचिकर है।
मैं तो चाहता हूँ कि
ख्याति हो आपकी।
क्योंकि मैं स्वभाव ही से
गुणियों का सेवक हूँ।'
खिन्न-सा निराश-सा हो
लौट चला चित्रकार!
भूखा चार दिन से था
कौन जानता था यह
उसकी अवस्था दीन।
क्योंकि इस देश में
कला के उपासक गण
फिरते हैं द्वार-द्वार पैसे के तीन-तीन?

१९४२

❀ ❀ ❀

श्री प्रभाकर माचवे

गीत

स्मृति-चिह्न हो चले जीर्ण विरल,
पर कितना सुदृढ़ है बन्धन।
मैं भुला-भुलाकर हार गया हूँ
बीती का कातर क्रन्दन।

सुधि-माल अरुक है मेरु-हीन
गत काल एक गतिमय स्यन्दन।
मैं शोध-शोधकर हार गया
भावी अजान, लो यह वन्दन!

सुधि की व्यालिनि लिपटी-सी,
मन कठिन अलग ज्यों तरु-चन्दन।
पर आज करूँ क्या, रुकता ही
है नहीं भ्रान्त-उर का स्पन्दन।

स्मृति-शिखा जल रही ये अकम्प,
झंझा आये, फिर भी मन्द न।
बाहर है दावानल भयार्त्त,
अन्दर छिः! खिलता वन नन्दन।

१९४३

❀ ❀ ❀

श्री गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री

शीतल हवा

तुम यहाँ मिलती रहो बस

तरु लता मिस मुग्ध इंगित,
विहग-शिशु के वे सँदेसे।
वे उड़ाये 'पत्र' प्रिय सखि!
गीत वे 'सन-सन' . . . भरे से॥
कुछ हमें लिखती रहो बस,
तुम यहाँ मिलती रहो बस।

'प्रकृति' के कर-पल्लवों से,
सुरभि-सीकर-सुमणि-सज्जित।
रसिक मधुकर मधुर-गुंजित,
कुसुम राग-पराग-रंजित॥
तुम हमें दिखती रहो बस,
तुम यहाँ मिलती रहो बस।

'श्वास-गति' यह श्वास से,
अति स-बल कर, उद्यान में।
खींच चंचल वसन अंचल,
फिर कहो कुछ कान में॥
'लहर' सी हँसती रहो बस।
तुम यहाँ मिलती रहो बस।

अखिल जड़-जंगम हितैषिणि!
प्राणधारिणि प्राणमयि, तुम।
देवि, तुम 'शीतल हवा' हो,
ब्रह्ममयि वरदानमयि तुम॥
पास में चलती रहो बस।
तुम यहाँ मिलती रहो बस।

१९४३

❀ ❀ ❀

श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया

(१) निर्झरिणी

मैं निर्जन वन की निर्झरिणी जग का कोलाहल क्या जानूँ?

मैं तममय नभ-उर का विषाद
क्या जानूँ ऊषा का सुहाग?
मैं रजनी रोने ही वाली
सन्ध्या का गायन क्या जानूँ?
मैं पाषाणों में पली हुई
भू-रज में ही घुल मिली हुई

है प्रकृति सहेली ही मेरी
जग झूठा नाता क्या जानूँ?
गिर उर से ही निकली उलझी
पर बढ़ी चली गिरती-पड़ती
नित विपदाओं में ही खेली
मैं सरल सुजीवन क्या जानूँ?

१९४५

(२) गायक

मेरी वीणा के तार इन्हें
उलझा ही रहने दो गायक।

कितने अरमानों की दुनिया
मैं बसा चुकी हूँ सपनों में,
जीवन का मधु खारा पानी बन
छलक रहा इन नयनों में।
छेड़ो न ढुलक जायेंगे
इनको अटका रहने दो गायक।

मेरी अगाध पीड़ा की क्या--
तुम थाह लगा सकते गायक!
मेरे दिल का यह दर्द कभी--
क्या स्वर में गा सकते गायक!
तुम समझ नहीं सकते जिसको
बेसमझा रहने दो गायक।

१९४५

❀ ❀ ❀

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

दीपक की मैं कम्पित ज्वाला

राजमहल में जलनेवाले दीपक की मैं कम्पित ज्वाला;
देखा करती सामन्तों का वैभव-विप्लव सदा निराला।
यहाँ दान का और धर्म का सदावर्त सबको ललचाता;
किन्तु जगत् क्या जाने क्यों यह मोहक नाटक खेला जाता?
सामन्तों की स्पर्द्धा को कब, सीधा-सादा मानव जाने;
निज श्रेणी के सामन्तों पर इनका घातक लाघव जाने?
दान-धर्म के अहंकार की विस्फोटक यह अन्तर्ज्वाला;
राज-महल में जलनेवाले दीपक की मैं कम्पित ज्वाला।

घोर नीचता और कुटिलता, सामन्तों की अपनी थाती,
पैसों से देवत्व प्राप्त कर फूली रहती इनकी छाती।
वह देवत्व कि जिसमें रहती सदा आसुरीही अभिलाषा,
कुचली जाती निर्ममता से जहाँ सुनहरी सबकी आशा।
रोनेवालों पर हँसता है इनका अन्तस्तल मतवाला,
राजमहल में जलनेवाले दीपक की मैं कम्पित ज्वाला।

भालों की नोकों पर होती, यहाँ लगानों की भरपाई,
जिसके बल पर बजती रहती इनके महलों में शहनाई!
और जाम पर जाम ढुलकते साकी के हाथों मतवाले,
रुनझुन-रुनझुन पायल बजते मस्ती को उकसानेवाले।
दूर खेत पर खड़े कृषक पर समझें क्या मस्ती की ज्वाला;
राज-महल में जलनेवाले दीपक की मैं कम्पित ज्वाला।

इन महलों से दूर वनों में झोपड़ियों में रहनेवाले
दीन कृषक क्या समझ सकेंगे जीवन के ये रंग निराले?
भूखे नंगे रहकर वे तो पशुओं के सँग स्वेद बहाते,
खेतों में निज हल को लेकर अपना जीवन सदा खपाते।
उन्हें क्या पता, उनके श्रम से निर्मित होती यह मधुशाला;
राज-महल में जलनेवाले दीपक की मैं कम्पित ज्वाला।

देख रही मैं इन महलों की, युग-युग से मोहक मधुशाला,
देख रही मैं इन महलों के सामन्तों की अन्तर्ज्वाला।
सामन्तों की रंगीनी में भोग-विलास उभर इतराता,
आत्मशक्ति, अभिमान सभी कुछ इसमें ही तो मिटता जाता।
खोकर यह सब पिटता इनकी मानवता का चरम दिवाला,
राज-महल में जलनेवाले दीपक की मैं कम्पित ज्वाला।

सामन्तों की मनोदशा पर मुझको सदा तरस है आता,
देख रही, दुश्मन के भय से, नहीं नींद से इनका नाता।
खून चूसते ये अधीन का, अँगुली कौन उठानेवाला!
इनके दुख पर हँसती दुनिया, किन्तु न कोई रोनेवाला!
इतनी विषम कहानी इनकी, दिल में सदा प्रकम्पित ज्वाला,
राज-महल में जलनेवाले दीपक की मैं कम्पित ज्वाला।

१९४५

❀ ❀ ❀

श्रीयुत चन्द्रकुँवर वर्त्वाल

हिमालय

हे उत्तर के श्वेत केश चिर-तरुण तपस्वी !
हे पृथ्वी के निर्मलतम धन ! हे वसुधा की--
स्वर्ग-भूमि ! हे गंगा की निर्मल लहरों के--
पिता हिमालय ! मेरी वाणी को प्रशस्तता---
औ' शुचिता दो ! अपने उज्ज्वल प्रासादों में,
सूर्य-चन्द्र के दीप जिन्हें आलोकित करते,
जिनमें अमरों के बालक प्रिय क्रीड़ा करते !
सुरकन्याएँ जहाँ मधुर बाँसुरियाँ लेकर,
करती रहतीं कोमल ध्वनियाँ--वहाँ मुझे भी
रहने दो; मुझको भी वे प्रिय स्वर सुनने दो;
स्वर्गलोक की उस पावन शोभा से अपने---
नयनों को मुझको भी हे पावन, भरने दो !
वह चिर चंचल देवकुमारी जो कानों में--
मेरे कर मृदु गुञ्जन, प्रेम-भरी बातों से
हृदय प्रफुल्लित कर मेरा---सहसा ही, मुझको
छोड़ चली जाती है अपने पंख खोलकर !
नील गगन में वायु-तरंग-सदृश मृदु हँसकर
उस सुरकन्या क्वचित् प्रेयसी को पाने को
बैठ तुम्हारे किसी शृंग पर मैं यौवन भर--
कठिन तप करूँगा--रोने से यदि उसका उर
पिघलेगा, मैं रोऊँगा रजनी भर जगकर !
यदि हँसने से वह आएगी; मैं निर्झर-सा
खड़ा रहूँगा हँस-हँस जीवन-पथ पर चलता;
वह चाहेगी यदि कमलों का हार पहनना
अपने मानस के निर्जन तट पर धीरे से--
उतर शान्त जल में चुपचाप खिले कमलों को
तोड़, गूँथ दिन भर माला, गुंजित छाया में
फिर सन्ध्या के समय उसे उसके चरणों पर
रख दूँगा,--जैसे पृथ्वी अपनी शोभा को
रख देती है सन्ध्या के कोमल चरणों पर।

१९४६

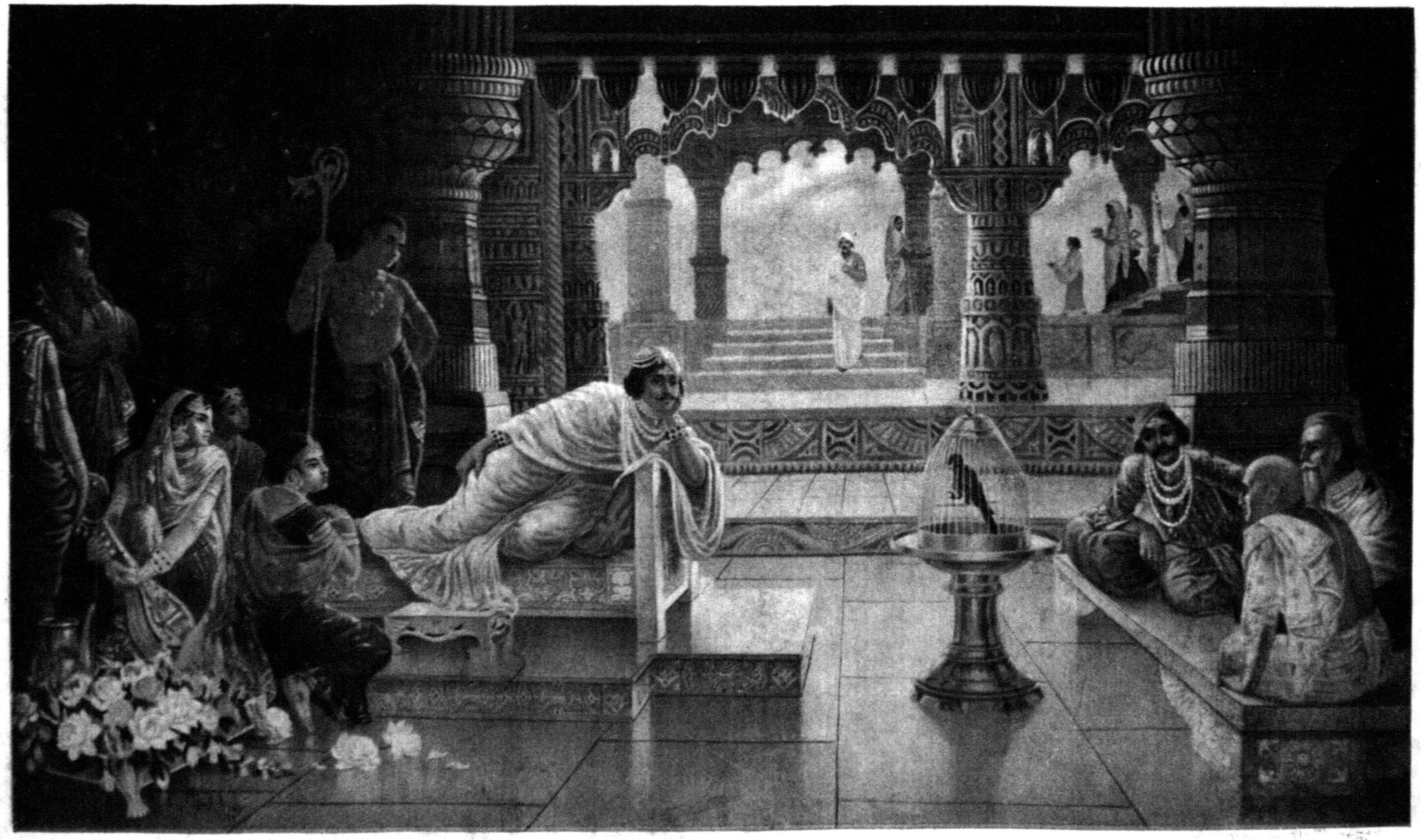
❀ ❀ ❀

श्रीयुत नागार्जुन

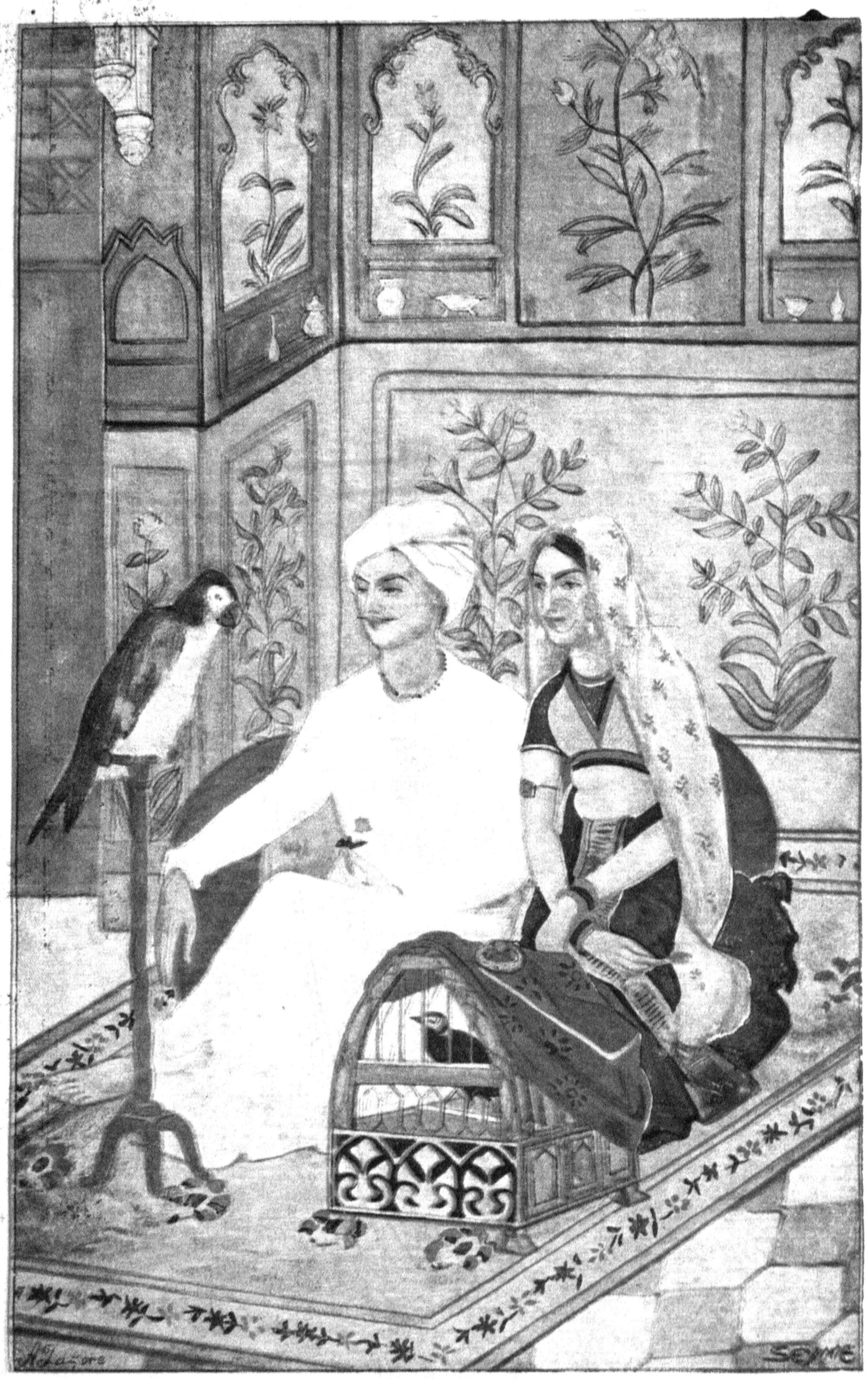
राम-लक्ष्मण

(विश्वामित्र के साथ)

सरयू के सैकत तट पर आसीन
बोले रघुकुल-कमल-दिवाकर राम,
दृष्टि सुमित्रानन्दन के प्रति डाल
तात, यही है बस अपना सीमान्त।
नदी-पार से होता है आरम्भ
शूर-वीर मागध लोगों का राज्य;
बाईं करवट, वाम बाहु उपधान,
दंडप्रलम्बित रखे पैर पर पैर,
डाले दक्षिण कटि पर दहिना हाथ,
करते हैं गुरुवर थोड़ा विश्राम।
मध्याह्नोत्तर भोजन के पश्चात्--
किसकी झिपती नहीं, बताओ आँख ?
अभी अभी कुछ ही क्षण के उपरान्त,
नदी पारकर हम रक्खेंगे पैर--
उसी भूमि पर; उद्यत ही है नाव।
किन्तु पूछता हूँ मैं तुमसे, वत्स !



शुक-शूद्रक-संवाद
(चित्रकार – यामिनीप्रकाश गांगोली)



तोता और मैना का झगड़ा

(चित्रकार—अवनीन्द्रनाथ ठाकुर)

होगा फिर कब स्वजन-समागम, हंत?
होंगे फिर कब हम अपनों के बीच?
कहाँ मिलेगा ऐसा सुन्दर देश?
धन्य हमारा कोसल जनपद धन्य!
सुजल सुफल बहुविध धन धान्य समेत!
लता-गुल्म-तृण-तरु-वल्ली परिव्याप्त!
सरयू जल-अभिसिंचित स्फीत समृद्ध!
सुर-नर-मुनि-मनमोहन परम ललाम!
कहाँ मिलेगी ऐसी उर्वर भूमि?
कहाँ मिलेगा इतना सुन्दर देश?
ऐसी माटी कहाँ मिलेगी वत्स!
भीतर-ही-भीतर पा करके क्लेश,
विह्वलता से हो करके अभिभूत,

दिया अनुज ने उत्तर
सच है, तात!
नहीं मिलेगा ऐसा सुन्दर देश....
नहीं मिलेगी ऐसी उर्वर भूमि....
धन्य हमारा कोसल जनपद धन्य!
सुजल सुफल बहुविध धन धान्यसमेत!
लता-गुल्म-तृण-तरु-वल्ली-परिव्याप्त !
सरयूजल-अभिसिंचित स्फीत समृद्ध!
सुर-नर-मुनि-मनमोहन परम ललाम!
नहीं मिलेगी ऐसी उर्वर भूमि--
नहीं मिलेगा ऐसा सुन्दर देश--
कहीं चराचर किंवा त्रिभुवन-मध्य,
ऐसी मिट्टी नहीं मिलेगी तात!
धन्य हमारा कोसल जनपद धन्य!
हैं ही यद्यपि हम दोनों के साथ
गाधिपुत्र कौशिक मुनि विश्वामित्र;
अति रुचिकर है यद्यपि इनका संग,
यद्यपि होते चलते हैं मालूम--
देश-काल के और पात्र के तथ्य;
सुन-सुन यद्यपि नानाविध आख्यान,
तिल-तिल करके बढ़ता जाता ज्ञान;

फिर भी यह जो अपना अभिजन छोड़,
दूर जा रहे हम पहली ही बार,
सत्य-सत्य कहता हूँ, इससे तात!
मुझको तो होता है बहुत कचोट!
याद आ रहे मुझको बारंबार
वृद्ध पिता के सजल स्निग्ध वे नेत्र!
शिशिर निशा के हिमाच्छन्न शशितुल्य--
माताओं के मुँह आते हैं याद!
बिदाकाल के वे मर्मान्तिक दृश्य
भूल गए हैं हम जो इतना शीघ्र,
तरुण-सुलभ कौतूहल था वह हेतु
हुआ न जिससे धैर्य हमारा भंग;
और नहीं कुछ, वही एक था हेतु!

हिला-हिलाकर करपल्लव अभिराम,
किया राम ने लक्ष्मण को संकेत--
तत्क्षण ही चुप हो जाने के हेतु!
लगा टूटने जब धीरज का बाँध,
शतदल नीलकमल पर से जलविन्दु
ढुलक पड़ें दो बार, श्वास-क्रम दीर्घ
नासापुट कम्पित निस्तेज कपोल!
अग्रज की यह दशा देख सौमित्र
हुए और भी व्यथित हुए निःशब्द।

हंसाकृति उस नौका पर आरूढ़,
करते सरयू-गंगा-संगम पार
सावधान हो सुनने लगे कुमार...
सरयू-उद्गम, तब सुरसरि माहात्म्य--
किस प्रकार गंगाजी की यह धार
भू पर उतरी तज हिमगिरि की गोद?
किस प्रकार पा सके परम पद, हंत,
कपिल-कोप-परिदग्ध-सगर सन्तान?
भागीरथी पड़ा क्यों इसका नाम?
...सुना उन्होंने यह समग्र इतिहास।
मुनि-मुख-पद्म-विनिःसृत सुधा समान,
अपने वंशधरों का यह आख्यान

सुना उन्होंने फिर-फिर देकर ध्यान।
पूर्वजनों का सुन-सुनकर गुण-गान,
अरे भरे है कभी किसी के कान ?

दक्षिण तट मे जा टकराई नाव।
उतर पड़े उस पर से तीनों व्यक्ति।
नाविक भी पा करके आशीर्वाद
विदा हुआ; तब मुनि ने कहा कि राम,
संमुख हो सुरसरि को करो प्रणाम !
क्या जाने, फिर कब यह पुण्य प्रवाह
हमें मिलेंगे स्नान-आचमन हेतु !

लिए राम ने तब दोनों कर जोड़।
मन-ही-मन कर दिया स्तवन आरंभ...
त्रिविध-तापहारिणि गंगे, तुम धन्य !
देवि तुम्हारी महिमा अपरम्पार !
पाकर तेरे जल-कण का संस्पर्श
कट जाते हैं युग-युग-संचित पाप।
हट जाते हैं बड़े-बड़े अभिशाप।
सुर-नर-मुनि-किंनर-विद्याधर यक्ष--
कौन नहीं रहता लालायित, हंत,
दरस-परस-मज्जन-अवगाहन हेतु ?
क्षुधित जनपदों को करते हैं शान्त,
देवि, तुम्हारे ये उर्वर तट-प्रान्त !
रिक्त न रहता जगजननी का अंक,
धन्य तुम्हारा महिमामय यह पंक !
तुम्हें सौंपते आए हैं हम, अम्ब,
अपने अपने वंशधरों की अस्थि !
साक्षी है पृथ्वी साक्षी आकाश !
देवि दयामयि, करता तुम्हें प्रणाम !
अनुज-सहित यह सांजलि राघवराम...

जोड़ पाणियुग, हो करके नतशीर्ष,
किए आचमन दोनों ने तत्काल !
मुनि को देख विलम्ब गए कुछ दूर;
लगे टहलने तट पर राजकुमार।
देख दिगन्त प्रसन्न, गगन निर्मेघ

कहा राम ने लक्ष्मण से--
ऊपर ताको, नभ है कैसा स्वच्छ !
नीरजनील निरभ्र परम रमणीय--
ज्यों हो शरद् प्रकृति का विजय-वितान !
सड़ी घास की सड़े पात की गंध,
अधसूखे कर्दम की गीली वास,
ध्यान खींच लाती है भू पर ओह !
धीरे-धीरे बच बच चलना, वत्स !
बिछे पड़े हैं खुरकंटक सब ओर।
पशुओं के खुर, चरवाहों के पैर,
छोड़ गए हैं अपनी-अपनी छाप
कल, परसों, तरसों, या चौथे रोज;
सो सब परिलक्षित होता है स्पष्ट;
आस-पास ही, निश्चय हैं कुछ गाँव।
क्रमशः घटती क्रमशः होती क्षीण--
इस धारा की शान्त चपल हिलकोर,
देखो लक्ष्मण ! करती है किस भांति
सिकतामय सितपट पर बारंबार
ऋजु कुटिला दोनों लिपि का व्यवहार !

हुए निवृत्त, किया इंगित चुपचाप,
आगे-आगे चले महामुनि आप;
पीछे-पीछे दशरथ के दो लाल।
तनिक दूर पर मिला विपिन विकराल--
पग-पग पर थे विकट झाड़-झंखाड़ !
डग डग पर वृद्ध वनस्पति ठाढ़ !
डालों से लिपटी थीं मोटी बेल,
मानो अजगर दिखा रहे हों खेल !
क्षुद्र झींगुरों की अविरत झन्झकार

रही विधाता को मानो ललकार !
श्वापद उठते थे रह-रह चीत्कार !
सड़ी लाश की आती थी दुर्गंध !
दिवस-निशा में था अभेद सम्बंध !

धर कर पगडंडी आगे की ओर,
बढ़े जा रहे थे तीनों ज्यों चोर--

चलते हैं पैरों की आहट मार!
नहीं थूकना खांसी नहीं खखार!
इस प्रकार जैसे-तैसे वे लोग
सकुशल पहुँचे महारण्य के पार।
वहीं ठहर जाने का हुआ विचार....

लक्ष्मण लाए ढूंढ़ कन्द-फल-मूल!
जल औ ईंधन ले आए श्रीराम।
चकमक पत्थर से निकालकर आग,
चेता दी गई धूनी बस तत्काल।
किया कुमारों ने ब्यालू, जलपान;
हुए स्वस्थ, पथ-क्रान्ति हो गई दूर।
हाथ-पैर धो, पीकर पानी मात्र,
मृगछाला पर रहे महामुनि लेट।
लगे चापने दोनों उनके पैर...
हुई ताड़का की चर्चा आरम्भ....

कहने लगे महर्षि शान्त गंभीर--
सुनो दाशरथि, इस वन का वृत्तान्त...
महाविकट राक्षसी ताड़का एक,
दस हजार हाथी की जिसमें शक्ति।
इस वन पर है उसका ही अधिकार!
चारों ओर मचा है हाहाकार!
नहीं इधर से आते-जाते पान्थ।
पशु-पक्षी भी उससे रहते दूर।
आस-पास के ग्राम निगम देहात
उस दुष्टा ने डाले सभी उजाड़!
लगा हुआ है कंकालों का ढेर!
राम, देखना दिन में यह अंधेर!
दुर्गम कानन, आतंकित कान्तार,
हमने जो चुपचाप किया है पार,
और नहीं कुछ, यही एक था हेतु...

बाल, वृद्ध, रोगी अथवा विकलांग
नहीं किसी को वह सकती है छोड़।
गर्भभार से मन्थर यद्यपि चाल,
पुलकित यद्यपि नव शिशु से प्रति रोम,
फिर भी स्त्रियाँ न पातीं उससे त्राण!
ले लेती है सबके ही वह प्राण।
अशुचि पूति दुर्गंधि अमेध्य अवद्य--
वस्तु-जात से सहजा उसकी प्रीति।
है न भक्ष्य किंवा अभक्ष्य का भेद...

कहते-कहते कथा अनेक प्रकार,
आधी से भी अधिक हो गई रात।
तमसाऽऽवृत अग, जग, तृण, तरु, निष्पंद।
खग मृग उरग सभी निद्रा में लीन--
अथवा आतंकित बैठे दम साध!
कोटि-कोटि नक्षत्रखचित आकाश,
अमित नेत्रमय मानो श्याम शरीर...
लगे घूमने हो करके निःशंक
भूत, प्रेत, राक्षस--रजनीचर जन्तु।
वृद्ध वनस्पति का लेकर वह ओट
उगा क्षीणप्रभ प्रियदर्शन शीतांशु!
कृष्णपक्ष की दशमी का शृंगार,
नहीं हर्ष का कर पाया संचार!
मुनि ने कहा कि सो जाओ अब तात!
आधी से भी अधिक हो गई रात।

१९४९

---

*राम-कथा" (प्रबंधकाव्य) का एक अंश।

❀ ❀ ❀

श्री दुष्यंतकुमार 'परदेसी'

गीत

अब भी सुधियों की समाधि पर एक दिया टिमटिमा रहा है।

आधी रात गई जीवन की
डूब गए आँखों के तारे,
राख जम गई, बुझने को हैं
यौवन के उज्ज्वल अंगारे,
फिर भी मोह न छूटा मन का,
नींद नापती पंथ गगन का,
चलते हैं अरमान हृदय के
पथ पर स्वर्णिम स्वप्न सँवारे,
कि एक विश्वास अधमरा अन्तर में छटपटा रहा है।

मूक हो गई वाणी, भाषा,
मेरा भाव-भरा उर रूठा,
मुझ पर आँख तरेरी विधि ने
मेरा भाग्य-सितारा टूटा,
निश्चय मेरा सा निश्चय हो,
जय मेरे साहस की जय हो,
अन्तर चीख रहा है फिर भी
गाने का अभ्यास न छूटा,
क्योंकि हृदय के संग संग कोई और गीत गुनगुना रहा है।

बढ़ता जाता अदृश मृत्यु के
भय का कम्पन मन-सरवर में,
गति है मौन, शिथिलता चंचल
ऐंठन बढ़ती जाती स्वर में,
उबल रहे मतवाले बादल
दुख के काले काले बादल
किन्तु थकी आशा का पंछी
अभी निरत उड़ रहा डगर में
क्योंकि प्रीति का शुचि ध्रुवतारा उसे रास्ता दिखा रहा है।
एक दिया टिमटिमा रहा है।

❀ ❀ ❀ १९५१

श्री भवानीप्रसाद मिश्र

अलोक पंथी

अब एक जगह से फूट गई थीं राहें दो,
मैं भले चाहता था कि निभा लूँ चाहें दो;
पर निभ न सकीं दोनों चाहें,
मैं चल न सका दोनों राहें!
मैं पथिक रुका,
और रहा तौलता देरी तक उन दोनों को,
पर शाम न जंगल में हो जाये
इसीलिए पाँवों को एक तरफ मोड़ा;
मन रहा सोचता बात दूसरे पथ की भी,
पर तय तो करना पड़ता है।
उसको छोड़ा।

जिस पथ पर पाँव मुड़े
और जिस पर मुड़े नहीं,
वे दोनों सुथरी राहें थीं—था फर्क एक,
था ज्यादातर लोगों ने पकड़ा पहली को,
और किया था ज्यादातर लोगों ने तर्क एक।
थी एक निहायत साफ,
दूर तक दिखती थी,
और दूजी, थोड़े आगे चलकर
गायब थी, पद-चिह्नहीन;
याने शायद पहली थी सबकी पहचानी।
दूजी नवीन।

इसको मेरी हिम्मत कहिए।
किस्मत कहिए,
या जो कहिए,
जिस पर थी बहुत घास ऊगी,
मेरे पाँवों ने उसे चुना;
अब रात हो गई है गहरी
और जंगल है;
बह रही जोर से हवा,
मुझे यह सुना-सुना,
जो तर्क हुआ था ज्यादातर
तेरे पाँवों ने उसे चुना!

यदि सुबह मिली मेरी मंजिल को तो अच्छा,
यदि हुआ नहीं इतना होना, तो हर्ज नहीं;
जीते-जी मनचीती होले यह बड़ा भाग,
पर कठिन बात फौरन होले यह फर्ज नहीं।
अब चल न सकूँ शायद मैं पथ,
अब अंत हो गया मेरा अथ।
पर यह मैं कैसे कहूँ कि मैंने गलत किया।
मैं सोच रहा हूँ,
युगों बाद जब रात खत्म हो जाएगी,
तब यही हवा गाएगी फिर से गीत,
'जीवन से नहीं, मरण से पथ की जीत'।

१९५२

❀ ❀ ❀

श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' एम० ए०

एक ऊर्म्मिल छन्द

(१)

कमल-दल में खिल रहा ब्रह्माण्ड मैं नीहार जिसका!
तरुण तरु-मर्मर स्वरों में भर किरन के
चेतना कोई सुनहली मुसकराई
नीलिमा से आदि-नभ की एक ज्वाला निकल आई
काल की निरवधि तरंगों पर लगा चुपके उतरने
दह्यमान प्रकाश-पुंज भविष्य—
गति-गौरव लगा सब ओर भरने
वह तुम्हारी पुलक-आकुल कल्पना का लग्न
मग्न तुम थे तूलिका के रंग में प्रिय!
स्वप्न में साकार जिसका
कमल-दल में खिल रहा ब्रह्माण्ड मैं नीहार जिसका!

(२)

साँस से मेरी न जाने
छू लिया तुमने धरा के प्यार को कब
छू लिया निस्सीम तम में
सृजन के आधार को कब
साँस से मेरी न जाने
अब प्रलय की छाँह में निज छवि छिपाए
दूर का दीपक बने तुम
मैं लिये चलता हृदय में अमर ज्योतिर्भार जिसका
कमल-दल में खिल रहा ब्रह्माण्ड मैं नीहार जिसका!

(३)

एक करुणा जागती
चिर साधना का अमृत ले तममय मरण में
एक अरुणा जागती आराधना
जैसे अनादि प्रियत्व का वरदान मधुमय जागरण में
एक ऊर्म्मिल छन्द
गति मृदु मन्द भर उठता, उमड़ता, गूँजता
सम्पूर्ण व्याप्ति समेट अपने एक क्षण में
एक क्षण :—
मेरा अखिल अस्तित्व यह शृंगार जिसका!
कमल-दल में खिल रहा ब्रह्माण्ड मैं नीहार जिसका!

(४)

शून्य की जय सृष्टि का संगीत वह
निस्पृह कला की जीत वह
जय शून्य के संगीत की जिस पर थिरकते
सप्तसिन्धु अशेष युग से
सात सुर जिससे निकल वंशी बजाते
हृदय की प्रत्येक धड़कन में निरंतर
प्राण-पथ पर जाल बुनते मिलन के
नीरव क्षणों का
विरह से यह विकल जीवन गीतमय त्योहार जिसका !

१९५३

❀ ❀ ❀

श्री भवानीप्रसाद तिवारी

गीत

मिटी न दरस-पियास, नैन भरि आये

विरह पीर के मृदु दंशन में
लपट उठे गीले ईंधन में
धरती जरी, अकास मेघ घिरि आये। मिटी न.....।

पग ने मग की बाध न मानी
श्रम की बगिया खिली जवानी
सीरी चली बतास, बुंद ढुरि आये। मिटी न....।

धूप-छाँह की खोल किवारी
खेलै उजियारी अँधियारी
छन-छन बिज्जु प्रकास, मेह झरि लाये। मिटी न.....।

१९५३

❀ ❀ ❀

श्री गिरिजाकुमार माथुर

(१) अन्ध शिलाओं की दुनियाँ

शब्दों की चट्टानों के पार
ज्वार भरा सागर लहराता है
दर्द भरा सागर लहराता है
चट्टानों की पीठ पर
लहर पछाड़ खाती है
तीखी तरंगों से
छाती बिंध जाती है
अंधे, तमिस्र, चीत्कार छिदे रंध्रों से
बूँदों की कोटि आँख खोल
लहर आती है
इन अछोर, मोहित
तिलिस्म-ढके कूलों में
कोई देवदूतों सी नावें चलाता है
ज्वार भरा सागर लहराता है
कहते हैं चाँदिनि की मिट्टी से
बने थे कगार यह
ए बड़े फूले
कमल संतरण सी थी
हंसपंख धार यह
तपभ्रष्ट मंत्र सा विफल हुआ

जिस दिन विश्वास, स्वप्न, प्यार यह
चाँद बना आबनूस,
परियाँ शिलाएँ स्याह
वर्तमान आहत, भविष्य अंधकार यह
फिर भी अनागत
बटोर तट-धूल श्याम
मिट्टी के चाँद रोज तोड़ता बनाता है
ज्वार भरा सागर लहराता है
जीवन की निर्यात बनीं
द्राव की अनुभूतियाँ
आसन पड़े ही रहे
टूट गईं मूर्तियाँ
बुझी, अनबुझी, जली
पाँत बढ़ी वर्षों की
पूजा-राख बनीं
द्राव सहन की विभूतियाँ
अपना कुछ नहीं——
क्यों इस पर पछताए मन
अर्पण का हर क्षण इतिहास बना जाता है।
ज्वार भरा सागर लहराता है

१९५५

(२) गूँजे अमर वाणी

चाँदनी में मृत्यु काली,
आज फिर गूँजे अमर वाणी तुम्हारी !
वह हजारों वर्ष पहिले
चाँदनी की रात निर्मल
राजमहलों के सलोने स्वप्न
चंदन पवन शीतल
रस भरे तन, नयन, मन
भुजबंध, क्षौम वसन सजीले
सेज सिंहासन सुनहले
रत्न-दीपक तारकोज्ज्वल

विभव की आलोक-तृष्णा में
छिपी थी रैन कृष्णा
छोड़ जिसको तुम बने
अमरत्व के अक्षय पुजारी

जरा-मरण बँधे जगत को
मिल गए आदर्श नूतन
घृणा, हिंसा, असत्, पापों के
थमे ज्वाला-प्रभंजन
कलुष-तापित धरा पर
बरसे नवीन सनेह-सावन

देश, काल, समाज, युग के
पा गए संदेस पावन

एक धरती, एक जगती,
एक मानव धर्म चिन्मय
एक इस आदर्श पर
टूटी दुखों की भीत भारी

आज भी इस धरा पर
हैं ज्वार हिंसा के उमड़ते
युद्ध, हत्या, घृणा के हैं
प्रेत चारों ओर उठते
उठ रही अणु-आँच रह रह
अग्नि-अंधड़, धुंध उड़ते
जिंदगी का टूटता क्रम
देश देशांतर उजड़ते

रचो मर्यादा नई,
दुनिया बने फिर पंचशीला
मुक्ति पाए मनुजता
हो शांतिमय पृथ्वी तुम्हारी !

१९५६

❀ ❀ ❀

श्री रघुवंशलाल गुप्त आई० सी० एस०

(१) तुम्हारा प्रसाद*

हम मर्त्यवासियों को जो कुछ दिया है दान
हमारी आशाओं का करके वह पूर्ण समाधान
रिक्त नहीं होता नाथ। सर्वशेष, बिना ह्रास
फिर से स्वयं सो लौट जाता है तुम्हारे पास।
नदी घूमती है अरे ग्राम ग्राम, देश देश
करती नित्य काज; हो जाता जब कर्म शेष।
उसकी धारा अनन्त जलाञ्जलिरूप धारे
झरती है अनिवार, श्रीचरणों में तुम्हारे।

फूल निज सौरभ से भर समस्त संसार
पाता नहीं संपूर्णता, उसका शेष शृंगार
होता पूजा में तुम्हारी। और वह पूजा नाथ,
करती नहीं वंचित जगत को किसी भाँति।
कवि गीतों में अपने कहता जो बातें गूढ़
दुनिया के नाना लोग लेते हैं उनमें ढूंढ़
नाना मनमाने अर्थ और नित्य, हृदयेश,
धाता है तुम्हारी ही ओर उनका अर्थ-शेष।

१९५६

*रवि बाबू की एक कविता का अनुवाद

(२) बन्धन टूटे रे !*

छूटे आज निशा के सपने,
सपने छूटे रे
टूटे बन्धन मेरे, मेरे
बन्धन टूटे रे।
प्राणों ने आवरण हटाये
निकल जगत के सम्मुख आये
फूटे हृदय कमल के दल सब,
सब दल फूटे रे
सपने छूटे रे।

स्वयं अन्त में द्वार तोड़ जो
आँगन आया मेरे
नयन-वारि बन हृदय लोटता
चरणों में उसके रे!
आज प्रभात रश्मि ने नभ से
हाथ बढ़ाया रे
किस ढब से
टूटा काराघर,
जय कारे उठे अनूठे रे
सपने छूटे रे!

१९५७

*रवि बाबू के एक गीत का अनुवाद।

❀ ❀ ❀

पं० हरिशंकर शर्मा

स्वतंत्र परतंत्र

होकर स्वतंत्र परतन्त्र हुए 'कवि', 'सम्पादक', 'साहित्यकार'।

जो लिख लिख आग उगलते थे,
अत्याचारों को दलते थे,
अन्यायों का मुँह मलते थे,
कटु कूट कुनीति कुचलते थे,
सो गये क्रान्ति के कर्णधार
कवि, सम्पादक साहित्यकार!

तप-त्यागों से स्वराज्य पाया,
संकीर्ण स्वार्थ-पथ अपनाया,
बिरलों पर वैभव बरसाया,
सब ओर घोर संकट छाया
हो रहे मौन दुर्गति निहार।
कवि, सम्पादक, साहित्यकार!

निर्भय, निष्पक्ष कहाते हैं,
धन, सत्ता पर मदमाते हैं,
जनता के भाव न भाते हैं,
प्रभुता पर बलि-बलि जाते हैं,
पाकर पद, वेतन, पुरस्कार
कवि, सम्पादक, साहित्यकार !

शुचिता, स्वतंत्रता में विचरें
साहित्यिकता में शक्ति भरें,
भय, स्वार्थ, शिथिलता दूर करें,
सिद्धान्त हेतु ही जियें, मरें
बन जायें न चारण-चाटुकार
कवि, सम्पादक साहित्यकार !

१९५७

❀ ❀ ❀

श्री वंशीधर शुक्ल

अब गीत प्रणय के गायें क्या ?

जीवन भर बोले 'इन्किलाब', अब गीत प्रणय के गायें क्या ?
अब तक झंझा से खेल किया, अब शरद-सुधा अपनायें क्या ?
जीवन शंखाहुलि सुमन एक, बुद्बुद सम क्षणिक अविश्वासी,
पल रहा मृत्यु के पिंजरे में, गतिशील साँस का अभ्यासी,
दुख-सुख सिनिमा के चित्र सदृश, रवि-शशि के दर्शन से बहते,
चलना ही है कर्तव्य, भाव कुछ बँध जाते कहते कहते।
जब भावों में अमरत्व छिपा, तो भावुकता ठुकरायें क्या ?

माना हमने प्रासाद बनाये, बृहद वंश परिवार रचा,
भवसिन्धु पार करनेवाला जलयान, विमान-विधान रचा,
वह छूट गया या टूट गया या रूठ गया तो चिन्ता क्या ?
दूसरा बनायें, फिर छोड़ें, अन्तर में भरें दीनता क्या ?
जब देह स्वयं छुट जाती है, दुनियाँ से मोह बढ़ायें क्या ?

अब तक दुर्भेद्य पहाड़ों से रण ठाना, चकनाचूर किया।
रवि, शशि, नक्षत्रों के होते, जग का कितना तम दूर किया
भावना बहाई पतझर में जिन्दगी-विकास, प्रकाश दिया
अपना उल्लास लुटाकर ही कण-कण को रण-उल्लास दिया।
अब खुद उल्लास भोगने को, मन का उल्लास बढ़ायें क्या ?

अब तक वाणी के बाण रहे, वरदान दिया चटुकारों को,
सर्वस्व लुटाया कँगलों को, कर दिया क्षमा गद्दारों को,
अपनापन भी अपना न सके, जीवन भर जीवन दिया दान,
युग युग की कालिख पोंछ, देश का जीवित रक्खा स्वाभिमान
अब स्वार्थवाद को अपना कर, परमार्थवाद ठुकरायें क्या ?

संस्थाओं से, समुदायों से, साम्राज्यों से संग्राम किया,
जो जो मग-बाधक व्याध मिले, उन सबका काम तमाम किया।
कोई न डट सका डाँट सुने, प्रलयंकर से डटकर बोले,
सत्ता क्षण भर टिक सकी नहीं, लेकर असंख्य बम के गोले।
अब सत्ता के चाकर बनकर, अपमानित समय बितायें क्या ?
श्रृंगार, प्रेम या विषय भोग जब अब तक रंच डिगा न सके,
फैशन, स्वरूप, यौवन-प्रवाह, जब तिल भर अंग हिला न सके,
गायन, नर्तन—सब जनखापन जब क्षण भर को भी भा न सका
कोई न कला व्यापी युग की, पागलपन पल्टा खा न सका,
अब धूर्तों के खुश करने को, साहित्यिक कला दिखायें क्या ?
हम कहते हैं : सत्ताधीशो ! तुम दमन करो, हम सहन करें;
लानत, आफत, अन्याय, जुल्म भी हम पर तनिक न रहम करें,
हम भी तो लड़नेवाले हैं, देखें लड़कर गति क्या होगी,
यह निश्चित है, पथभ्रष्ट नहीं अपनी अविनाशी मति होगी।
जब जीवनसाथी दुःख मिला, तो सुख की आस लगायें क्या ?
जीवन भर बोले इन्किलाब, अब गीत प्रणय के गायें क्या ?

१९५७

❀ ❀ ❀

श्री विजय राठौर

इंसान

चाहिए इंसान छाती का बड़ा जो हर घड़ी हर साँस को जीना सिखाये।
और सूरज बन धरा पर सो गयी सी जिन्दगी के बीच के अँखुआ जगाये,
और बादल बन बड़ी तदबीर, हिम्मत की मुरझती सूखती फसलें सिंचाये,
और मारुत बन उमंगों की हरी सी पौध को फिर जोश फूलों से खिलाये,
और चन्दा बन नयी उम्मीद-चाँदी-चाँदनी बरसे, घनी खुशियाँ लुटाये,
चाहिए इंसान छाती का बड़ा जो आग पी पीकर बड़े सागर बनाये।
चाहिए इंसान.....।
और आकाशी अँगारे-माणिकों की चाल को फबती हुई माला पिन्हाये,
और खाई-खन्दकों के लाँघने को मौज से त्यौहार सा माने, मनाये,
और आँधी-अन्धड़ों के साथियों सँग बाढ़ की नदियाँ भयंकर तैर जाये,
और ओलों से बचाने दूसरों को एक छिगुनी पर बड़े पर्वत उठाये,
चाहिए इंसान छाती का बड़ा जो हर जगह जीती हुई दुनिया बसाये।
चाहिए इंसान.....।

और डाले घूमकर जो सात भाँवर मौत को भी प्यार देकर ब्याह लाये,
और मरघट की छबीली सी सुहागिन की सजीली सी सुखद शैया सजाये,
और लपटों के बिछौने पर भरे अँगड़ाइयाँ औ' खेल खेले, रँग रचाये,
और होठों में छिपाये खूब जीने के सुरीले गीत गा गाकर सुनाये,
चाहिए इंसान छाती का बड़ा जो लाश को भी पैर से चलना बताये।
चाहिए इंसान.....।

१९५८

❀ ❀ ❀

श्री सुरेशचन्द्र

प्रेमचन्द

(एक नाटकीय स्वगत)

"क्या कहा ?--रात बहुत बीत गई ? अच्छा है, शान्ति में कलम खूब चलती है, मन के संसार के नक्शे उतरते हैं बिना किसी बाधा के, और उस देश के नारी-नर पूर्ण प्राण होकर विचरते हैं, क्योंकि भीड़-भाड़, शोर, काम-धाम सारे दिन उनको न उठाने सर देते हैं और वे दबे पड़े रहते हैं कब्रों में मुर्दों से। लेकिन जरा देखो तो खिड़की से--चमक रहे लाखों सितारे आस्मान में, --मफलर जरा दे देना, लगता है मुझको बुखार है, ठंडकभी कितनी है, इसीसे तो सरदर्द बढ़ता है--लेकिन जरा देखो तो कितना सुनसान समां ! तलैया का पानी भी ठिठुरा हुआ ! सोया है; महँगू और होरी अहीर के झोंपड़े अब बच्चों के कलरव से गूंजते नहीं हैं--सच, मुझको निज देश के मिट्टी से सने, नंगे, काले ये बालक सब प्यारे बहुत लगते ! देखा किया हूँ मैं घंटों तक खेतों में किसानों को जोतते, सूरज जब जलता है ऊपर से नीचे से धरती, देखा है दुपहर में मेंड़ पर बैठकर रोटी गुड़ खाते औ सहलाते हुए बैलों को, वे ही तो उसकी जीवन नैया के अकेले खेवैय्या हैं, और सारी दुनिया तो भूखे भेड़िए की तरह ताक रही उसको कि कब फसल पके और टूट पड़ें वे सब, नोच लें, खसोट लें, छोड़कर तीन चीज-- घुटी आह अन्तर में, हड्डियाँ शरीर में और इक लँगोटी बस। इनके ही खून और पसीने पर चलता है राजकाज लखनऊ, दिल्ली और लन्दन का शान से, मान से ! जाने भगवान कब बदलेंगे ढाँचा यह, पिसकर इन्सान जहाँ बनता हैवान है,--पिसता है मध्यवर्ग, कन्धे पर लादे हुए युग की कुरीतियों औ' थोथे विश्वासों को; मानकर उनको जीवन का सत्य और एकमात्र आदर्श। यही लोग पूजते हैं धर्म का भूत, औ' महन्तों के अखाड़ों के लिए यही देते धन मानकर उनको परमेश्वर का ठीकेदार ! और बड़े आदमी ?--उनके लिए तो बस जिन्दगी इक मौज है। राष्ट्र क्या ? समाज क्या ? --इससे क्या मतलब है ? पैसा इन्हें मिले जाय किसी से गुलामी या आजादी, भलाई या बुराई, मानवता या और कुछ --इनके निकट निरर्थक ये शब्द हैं। ये ही तो मुँह हैं जिनसे अँगरेजी जोंक खून चूसती है भारत का। लेकिन यह ढाँचा बदलेगा ! बदलेगा ?! रात यह कब तक दबाएगी जग को अँधेरे से ? सूरज तो निकलेगा --उस तरफ--पूरब में--जहाँ उस भिखारिन की झोंपड़ी है, उसी तरफ से सवेरा अभी आएगा। बज तो उठी है चारणी प्रभाती साबरमती के आश्रम के भिखारी के कण्ठ में--सुनकर जिसे देश औ समाज अपना लेने लगा है अँगड़ाइयाँ। मानकर मुर्दा इसे लोगों ने इस पर अत्याचार अनाचार के जो महल बनाये थे गिरते हैं वे और करते हैं और शोर !

पर्दे को चीर कर नारी शक्ति आ रही देश के सगर-सुतों के पाप प्रक्षालन को गंगा सी। जागा है भारत की मिट्टी का बेटा। सुन भेरी मानवता की, बोली जो गांधी की साँसों से।"

"मुझको दवा दे दो;" "क्या दवा नहीं है? क्यों? खैर कोई बात नहीं। पैसे के बिना जिन्दा हम रहते हैं यही क्या कम है! पत्रिका के चन्दे को छूना नहीं, होगा भी कितना?—यही बस दस-पाँच रुपये—लोग पता नहीं क्यों, चन्दा न भेजते हैं! सोचते हैं मैं कोई लखपती-करोड़पती सेठ हूँ जिनके घर पाकर निज वाहन लक्ष्मी है आ बसी! मेरी तो जीविका कलम है, कागज है और मेरे दिल में उठते हुए लाखों सपनों के ढेर हैं।

"दर्द तो होता है लेकिन मुझे रोको मत! बातें कर लेने दो। अक्सर रात में लिखते-लिखते दिल में कचोट एक उठती है, बातें कर लेने की, सब कुछ कह देने की, सब कुछ दे देने की, और इसी जगह पर ईश्वर की सृष्टि से हमारी सृष्टि छोटी है। मेरे संसार के प्राणी सब दिल में, दिमाग में, कागज में रहते हैं। उनमें से कोई किसी अर्धरात्रि में जगकर, बाँट नहीं लेता है मेरा दुख, मेरा सूनापन! आह स्रष्टा, कितने अकेले तुम! ईश्वर की सृष्टि से हमारी सृष्टि छोटी है, लेकिन हमारे रचे हुए प्राणी नहीं बुलबुले पानी के, फ्रांस की थायस फ्रांस की नहीं है सिर्फ, बल्कि सब देश की, काल की, सत्य पारखी आत्मा का प्रतिबिम्ब है। आज भी अक्सर रामगिरि पर यक्ष को सिसकते और सन्देश कहते हुए सुनता हूँ।—हमारा है देश अमर। रोज के साथी हैं अनातोले फ्रांस और गोर्की सरीखे जन; इनको छोड़कर कैसे जुत जाऊँ मैं सरकारी कोल्हू में? स्वदेश को पीसने हेतु अँगरेज बहुत पैसा तो देता है, लेकिन यह लेते हैं वही जिन्हें कोई भी खरीद ले खनखनाते सिक्कों से! लेकिन मैं तुम्हारे समक्ष अपराधी हूँ बहुत बड़ा, तुम भी तो नारी हो; कितनी आशाएँ अभिलाषाएँ लिये हुए लाँघकर बंधन समाज के आयी हो। किन्तु मैं न कर सका पूरी इच्छाएँ वे! अपनी असफलताएँ मानता हूँ, पर मैं क्या करूँ? सृजन की कोई अति बलवती प्रेरणा ढकेलती है मुझको निरन्तर इन काँटों पर साथ-साथ सबको। आज यही-होता मैं विलायत में, लाखों रुपये चले आते नित्य बहते ग्राहक-प्रकाशक से; किन्तु यह भारत, आह! यहाँ आज भी लाले हैं जीवन के। लेकिन मुझे लिखना है हिन्दी में रोज-रोज क्योंकि एक दिन यही भारत की वाणी बनेगी, और यदि हम इसका भर न सके भण्डार कौन इसे यश देगा?'

'कितना है बजा?" "तीन?

अच्छा अब बस करूँ। लेकिन अभी पूरा करना है लेख पत्रिका के लिए। दुःख न करो क्योंकि अभी मुझे काफी दिन जीना है। जरा लालटेन में तेल अगर हो तो डालकर तेज कर दो ताकि लिखता ही रहूँ जब तक सवेरा न आ जाय!"

१९५९

❀ ❀ ❀

श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा

वंशी और वादक

बाँसुरी से कह उठा वादक कि तू कितनी भली है,
आह मेरे इंगितों पर बन गई तू बावली है।
किन्तु लगता आज भी मन में अनूठा भाव सोया,
जो न अब तक प्रकट हो पाया भुवन में, रहा खोया।
बाँसुरी बोली कि भ्रम है, सत्य ही कह दूं सुवादक!
फूँकते हो तुम मुझे तब सोचती यह, सुनो भावुक।
साँस का आधार लेकर अन्य का किसकी कहूँ मैं—
बात अपनी या तुम्हारी? कौन लय-स्वर में बहूँ मैं।
मैं तुम्हारा बनूँ साधन या कि अपना साध्य बनकर
व्यक्त हो जाऊँ स्वयं ही, तुम्हें कर विस्मृत निमिष भर।
द्वंद्वमय मैं इसलिए अभिव्यक्ति की क्रीड़ा अधूरी,
सुनो हे स्वरकार! अपने बीच अब भी बहुत दूरी।

❀ ❀ ❀ १९५९

भाग ६] जनवरी १९०५ [संख्या १



वार्षिक मूल्य ३)] सम्पादक-महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।-)

कहानी-खंड

कहानी-खंड

इन्दुमती

पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी

[जून १९०० की सरस्वती की छठवीं संख्या में पहिली बार दो कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। पहिली कहानी 'इन्दुमती' और दूसरी 'चन्द्रलोक की यात्रा' थी। दूसरी कहानी किसी अँगरेजी कहानी के आधार पर लिखी हुई मालूम होती है। वह लम्बी है और धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी। 'इन्दुमती' सरस्वती ही में नहीं, हिन्दी में आधुनिक शैली की प्रथम कहानी है। हिन्दी साहित्य के कई इतिहासकारों का यह मत है। इससे पहिले हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और पीयूष प्रवाह में एक-दो कहानियाँ छपी थीं। पं० अम्बिकादत्त व्यास की 'आश्चर्य वृत्तान्त' नाम की, और पं० बालकृष्ण भट्ट की 'नूतन ब्रह्मचारी' नामक कहानियाँ संभवतः इसके पहिले ही प्रकाशित हो चुकी थीं। किन्तु 'इन्दुमती' को ही हिन्दी की पहिली आधुनिक कहानी होने का श्रेय दिया जाता है। गोस्वामी किशोरीलालजी श्रेष्ठ उपन्यासकार और कहानी लेखक थे।]

इन्दुमती अपने बूढ़े पिता के साथ बिंध्याचल के घने जंगल में रहती थी। जबसे उसके पिता वहां पर कुटी बना कर रहने लगे, तब से वह बराबर उन्हीं के साथ रही; न जंगल के बाहर निकली, न और किसी दूसरे का मुंह देख सकी। उसकी अवस्था चार वर्ष की थी जब कि उसकी माता का परलोकवास हुआ और जब उसके पिता उसे लेकर वनवासी हुए। जबसे वह समझने योग्य हुई तब से नाना प्रकार के बनैले पशु पक्षियों, वृक्षावलियों और गंगा की धारा के अतिरिक्त यह नहीं जानती थी कि संसार वा संसारी सुख क्या है और इसमें कैसे कैसे विचित्र पदार्थ भरे पड़े हैं। फूलों को बीन बीन कर माला बनाना, हरिणों के संग कलोल करना, दिन भर वन २ घूमना, और पक्षियों का गाना सुनना; बस यही उसका काम था। वह यह भी नहीं जानती थी कि "मेरे बूढ़े पिता के अतिरिक्त और भी कोई मनुष्य संसार में है।"

एक दिन वह नदी में अपनी परछाईं देखकर बड़ी मोहित हुई, पर जब उसने जाना कि यह मेरी ही परछाईं है, तब बहुत ही लज्जित हुई, यहां तक कि उस दिन से फिर कभी उसने नदी में अपना मुख नहीं निहारा।

गरमी की ऋतु—दोपहर का समय—जब कि उसके पिता अपनी कुटी में बैठे हुए गीता की पुस्तक देख रहे थे, वह नदी किनारे पेड़ों की ठंढी छाया में घूमती, फूलों को तोड़ तोड़ नदी में बहाती हुई कुछ दूर निकल गई थी, कि एकाएक चौंक कर खड़ी हुई। उसने एक ऐसी वस्तु देखी कि जिसका उसे स्वप्न में भी ध्यान न था और जिसके देखने से उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। उसने क्या देखा कि एक बहुत ही सुन्दर बीस बाईस वर्ष का युवक नदी किनारे पेड़ की छाया में घास पर पड़ा सो रहा है। इन्दुमती ने आज तक अपने बूढ़े पिता को छोड़ किसी दूसरे मनुष्य की सूरत तक नहीं देखी थी। वह अभी तक यही सोचे हुई थी कि यदि संसार में और भी मनुष्य होंगे तो वे भी मेरे पिता की भांति ही होंगे और उनकी भी डाढ़ी मूंछें पकी हुई होंगी। उसने जब अच्छी तरह आंखें फाड़ फाड़ कर उस परम सुन्दर युवक को देखा तो अपने मन में निश्चय किया कि "मनुष्य तो ऐसा होता नहीं, हो न हो यह कोई देवता होंगे क्योंकि मेरे पिता जब देवताओं की कहानी सुनाते हैं तो उनके ऐसे ही रूप रंग बतलाते हैं।" यह सोच कर वह मन में कुछ डरी और कुछ दूर हट पेड़ की ओट में खड़ी हो टकटकी बांध उस युवक को देखने लगी। मारे डर के युवक के पास तक न गई और उसकी सुन्दरता से मोहित हो कुटी की ओर भी अपना पैर न बढ़ा सकी। योंही घंटों बीत गए, पर इन्दुमती को न जान पड़ा कि मैं कितनी देर से खड़ी खड़ी इसे निहार रही हूं। बहुत देर पीछे वह अपना जी कड़ा कर के वृक्ष की ओट से निकल

युवक के आगे बढ़ी। दो ही चार डग चली होगी कि एकाएक युवक की नींद खुल गई और उसने अपने सामने एक परम सुन्दरी देवी-मूर्त्ति को देखा, जिसके देखने से उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह मन ही मन सोचने लगा कि "इस भयानक घनघोर जंगल में ऐसी मनमोहिनी परम सुन्दरी स्त्री कहां से आई! ऐसा रूप रंग तो बड़े बड़े राजाओं के रनिवास में भी दुर्लभ है, सो इस वन में कहां से आया? या तो मैं स्वप्न में स्वर्ग की सैर करता होऊंगा, या किसी देवकन्या या वनदेवी ने मुझे छलने के लिए दर्शन दिया होगा।" यही सब सोच विचार करता हुआ वह भी पड़ा पड़ा इन्दुमती की ओर निहारने लगा। दोनों की रह रह कर आंखें चार हो जातीं, जिनसे अचरज के अतिरिक्त और कोई भाव नहीं झलकता था। योंही परस्पर देखाभाली होते होते एकाएक इन्दुमती के मन में किसी अपूर्वभाव का उदय हो आया, जिससे वह इतनी लज्जित हुई कि उसकी आंखें नीची और मुख लाल हो गया। वह भागना चाहती थी कि चट युवक उठकर उसके सामने खड़ा हो गया और कहने लगा "हे सुन्दरी, तुम देवकन्या हो या वनदेवी हो? चाहे कोई हो, पर कृपाकर तुमने दर्शन दिया है तो जरा सी दया करो, ठहरो, मेरी बातें सुनो, घबराओ मत। यदि तुम मनुष्य की लड़की हो तो डरो मत। क्षत्री लोग स्त्रियों की रक्षा करने के सिवाय बुराई नहीं करते। सुनो, यदि तुम सचमुच वनदेवी हो तो कृपाकर मुझे इस वन से निकलने का सीधा मार्ग बता दो। मैं विपत्ति का मारा तीन दिन से इस वन में भटक रहा हूं, पर निकलने का मार्ग नहीं पाता। और जो तुम मेरी ही भांति मनुष्य जाति की हो तो मैं तुम्हारा 'अतिथि' हूं, मुझे केवल आज भर के लिए टिकने की जगह दो। और अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।"

युवक की बातें सुनकर इन्दुमती ने मन में सोचा कि "तो क्या ये देवता नहीं हैं? हम लोगों ही की भांति मनुष्य हैं? हो सकता है, क्योंकि जो ये देवता होते तो ऐसी मीठी मीठी बातें बना कर अतिथि क्यों बनते। देवताओं को कमी किस बात की है, और वे क्या नहीं जानते जो हमसे वन का मार्ग पूछते! तो यह मनुष्य ही होंगे, पर क्या मनुष्य इतने सुन्दर होते और ऐसी मीठी बातें करते हैं? अहा! एक दिन मैं जल में अपनी सुन्दरता देखकर ऐसी मोहित हुई थी, किन्तु इनकी सुन्दरता के आगे तो मेरा रूप रंग निरा पानी है।" इस तरह सोचते विचारते उसने अपना सिर ऊंचा किया, और देखा कि युवक अपनी बात का उत्तर पाने के लिए सामने एकटक लगाए खड़ा है। यह देख वह बहुत ही अधीनताई और मधुर स्वर से बोली कि "मैं अपने बूढ़े पिता के साथ इसी घने जङ्गल के भीतर एक छोटी सी कुटी में, जो एक सुहावनी पहाड़ी की चोटी पर बनी हुई है, रहती हूं। यदि तुम मेरे अतिथि हुआ चाहते हो तो मेरी कुटी पर चलो, जो कुछ मुझसे बनेगा, कन्दमूल, फलफूल और जल से तुम्हारी सेवा करूंगी, मेरे पिता भी तुम्हें देख कर बहुत प्रसन्न होंगे।" इतना कहकर वह युवक को अपने साथ ले पहाड़ी पगडंडी से होती हुई अपनी कुटी की ओर बढ़ी।

उसने जो युवक से यह कहा था कि "मेरे पिता भी तुम्हें देखकर बहुत प्रसन्न होंगे" सो केवल अपने स्वभाव के अनुसार ही कहा था, क्योंकि वह यही जानती थी कि ऐसी सुन्दर मूर्त्ति को देख मेरे पिता भी मेरी ही भांति आनन्दित होंगे। परन्तु कुटी के पास पहुंचते ही उसका सब सोचा विचारा हवा हो गया, उसके सुख का सपना जाता रहा और वह जिस बात को ध्यान में भी नहीं ला सकती थी वही आगे आई। अर्थात् वह बूढ़ा अपनी लड़की को पराये पुरुष के साथ आती हुई देखकर मारे क्रोध के आग हो गया, और अपनी कुटी से निकल युवक के आगे खड़ा हो यों कहने लगा "अरे दुष्ट! तू कौन है? क्या तुझे अपने प्राण का मोह नहीं है जो तू बेधड़क मेरी कन्या से बोला और मेरी कुटी पर चला आया? तू जानता नहीं कि जो मनुष्य मेरी आज्ञा के बिना इस वन में पैर रखता है उसका सिर काटा जाता है? अच्छा, ठहर, अब तुझे भी प्राणदंड दिया जायगा।" इतना कह वह क्रोध से युवक की ओर घूरने लगा। विचारी इन्दुमती की विचित्र दशा थी। उसने आज तक अपने पिता की ऐसी भयानक मूर्त्ति नहीं देखी थी। वह अपने पिता का ऐसा अनूठा क्रोध देख पहिले तो बहुत डरी, फिर अपने ही लिए एक युवा बटोही बिचारे का प्राण जाते देख जी कड़ा कर बूढ़े के पैरों पर गिर पड़ी और रो रो गिड़गिड़ा गिड़गिड़ा कर युवक के प्राण की भिक्षा मांगने लगी। और उसने अपने पिता को अच्छी तरह समझा दिया कि "इसमें युवक का कोई दोष नहीं है, उसे मैं ही

कुटी पर ले आई हूं। यदि इसमें कोई अपराध हुआ हो तो उसका दंड मुझे मिलना चाहिए।" कन्या की ऐसी अनोखी बिनती सुन कर बुड्ढा कुछ ठंडा हुआ और युवा की ओर देखकर बोला कि 'सुनो जी, इस अज्ञान लड़की की बिनती से मैंने तुम्हारा प्राण छोड़ दिया, परन्तु तुम यहां से जाने न पाओगे। कैदी की तरह जन्म भर तुम्हें यहां रह कर हमारी गुलामी करना पड़ेगा, और जो भागने का मन्सूबा बांधोगे तो तुरंत मारे जाओगे।" इतना कह कर ज़ोर से बूढ़े ने सीटी बजाई, जिसकी आवाज़ दूर दूर तक वन में गूंजने लगी और देखते २ बीस पच्चीस आदमी हट्टे कट्टे यमदूत की सूरत, हाथ में ढाल तलवार लिए बुड्ढे के सामने आ खड़े हुए। उन्हें देखकर उसने कहा "सुनो वीरो, इस युवक को (अंगुली से दिखाकर) आज से मैंने अपना बँधुवा बनाया है। तुम लोग इस पर ताक लगाए रहना, जिसमें यह भागने न पावै। और इसकी तलवार ले लो। बस जाओ।" इतना सुनते ही वे सब के सब युवक से तलवार छीन सिर झुकाकर चले गए, पर इस नए तमाशे को देख इन्दुमती के होश हवास उड़ गए। जबसे उसने होश सम्हाला तब से आज तक बुड्ढे को छोड़ किसी दूसरे मनुष्य की सूरत तक नहीं देखी थी, पर आज एकाएक इतने आदमियों को अपने पिता के पास देख वह बहुत ही चकपकाई, पर डर के मारे कुछ बोली नहीं। बुड्ढे ने युवक की ओर आंख उठाकर कहा कि "देखो अब तुम मेरे बँधुवे हुए, अब से जो जो मैं कहूंगा तुम्हें करना पड़ेगा। उनमें पहिला काम तुम्हें यह दिया जाता है कि तुम इस सूखे पेड़ को (दिखला कर) काट काट कर लकड़ी को कुटी के भीतर रक्खो। ध्यान रक्खो, यदि जरा भी मेरी आज्ञा टाली है तो समझ लेना कि तुम्हारे धड़ पर विधाता ने सिर बनाया ही नहीं। और अरी इन्दुमती! तू भी कान खोल कर सुन ले। इस युवक के साथ यदि किसी तरह की भी बात चीत करेगी तो तेरी भी वही दशा होगी।" इतना कहकर बुड्ढा कुटी के भीतर चला गया और फिर उसी गीता की पुस्तक को ले पढ़ने लगा।

बुड्ढे का विचित्र रंग ढंग देखकर हमारे युवक के हृदय में कैसे कैसे भावों की तरंगें उठी होंगी इसे हम लिखने में असमर्थ हैं। पर हां, इतना तो उसने अवश्य निश्चय किया होगा कि "यदि सच मुच यह सुन्दरी इस बुड्ढे की लड़की हो तो विधाता ने पत्थर से नवनीत पैदा किया है।"

निदान बिचारा युवक अपने भाग्य पर भरोसा रखकर कुल्हाड़ा हाथ में ले पेड़ काटने लगा और इन्दुमती पास ही खड़ी खड़ी टकटकी लगाए उसे देखने लगी। दो ही चार बार के टांगा चलाने से युवक के अंग अंग से पसीने की बूंदें टपकने लगीं और वह इतने जोर से सांस लेने लगा जिससे जान पड़ता था कि यदि योंही घंटे दो घंटे यह टांगा चलावेगा तो अपनी जान से हाथ धो बैठेगा। उसकी ऐसी दशा देख इन्दुमती ने उसके लिये फल और जल ला, आंखों में आंसू भरकर कहा—"सुनो जी, ठहर जाओ, देखो यह फल और जल मैं लाई हूं, इसे खा लो, जरा ठंढे हो लो, तो फिर काटना; छोड़ो मान जाओ।" युवक ने उसकी प्रेमभरी बातों को सुनकर कहा—"सुन्दरी, मैं सच कहता हूं कि तुम्हारा मुंह देखने से मुझे इस परिश्रम का कष्ट जरा भी नहीं व्यापता, यदि तुम योंही मेरे सामने खड़ी रहो तो मैं बिना अन्नजल किए सारे संसार के पेड़ काट कर रख दूं। और सुनो तो सही, अपने पिता की बातें याद करो, क्यों नाहक मेरे लिये अपने प्राण संकट में डालती हौ? यदि वे सुन लेंगे तो क्या होगा? और मैं जो सुस्ताने लगूंगा तो लकड़ी कौन काटेगा? जब वे देखेंगे कि पेड़ नहीं कटा तो कैसा उपद्रव करेंगे? इसलिए हे सुशीले! मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दो।"

युवक की ऐसी करुणा भरी बातें सुनकर इन्दुमती की आंखों से आंसू बहने लगे। उसने बरजोरी युवक के हाथ से कुठार ले लिया और कहा "भाई! चाहे कुछ भी हो, पर ज़रा तो ठहर जाओ, मेरे कहने से मेरे लाए हुए फल खाकर ज़रा दम ले लो, तब तक तुम्हारे बदले में लकड़ी काटती हूं।" युवक ने बहुत समझाया पर वह न मानी और अपने सुकुमार हाथों से कुठार उठा कर पेड़ पर मारने लगी। युवक ने जल्दी जल्दी उसके बहुत कहने से कई एक फल खाकर दो घूंट जल पीया। इतने ही में हाथ में नंगी तलवार लिए बुड्ढा कुटी से निकल कड़क कर युवक से बोला—

"क्यों रे! नीच! तेरी इतनी बड़ी सामर्थ्य कि आप तो बैठा बैठा सुस्ता रहा है और मेरी लड़की से पेड़ कटवाता है? रह, अभी तेरा सिर काटता हूं।" फिर इन्दुमती की

ओर घूम कर बोला—"क्यों री ढीठ, तैंने मेरे मना करने पर भी इस दुष्ट से बात चीत की ! रह जा, तेरा भी बध करता हूं।"

बुड्ढे की बातें सुन युवक उसके पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा—"महाशय, इस विचारी का कोई अपराध नहीं है, इसे छोड़ दीजिए, जो कुछ दंड देना हो वह मुझे दीजिए।"

इन्दुमती भी उसके पैर पर गिर कर कहने लगी "नहीं, नहीं, इनका कोई दोष नहीं है, मैंने बरजोरी इनसे कुठार ले ली थी, इसलिए, हे पिता ! अपराधिनी मैं हूं, मुझे दंड दीजिए, इन्हें छोड़ दीजिए।"

उन दोनों की ऐसी बातें सुनकर बुड्ढे ने कहा "अच्छा आज तो मैं तुम दोनों को छोड़े देता हूं, पर देखो फिर मेरी बातों का ध्यान न रक्खोगे तो मारे जाओगे।" इतना कह, बूढ़ा कुटी में चला गया और वे दोनो एक दूसरे का मुंह देखने लगे। इन्दुमती बोली कि "घबराओ मत, मेरे रहते तुम्हारा बाल भी बांका न होगा" और युवक ने कहा "प्यारी, क्यों व्यर्थ मेरे लिये कष्ट सहती हो? जाओ, कुटी में जाओ।" पर इन्दुमती उसके मुंह की ओर उदास हो देखने लगी और वह कुठार उठा कर पेड़ काटने लगा। इतने ही में फिर बाहर निकल कर बुड्ढा बोला "ओ छोकरे ! संध्या भई, अब रहने दे। पर देख, कल दिन भर में जो सारा पड़ न काट डाला तो देखियो मैं क्या करता हूं। और सुनती है, री इन्दुमती ! इसे कुटी में ले जाकर सड़े गले फल खाने को और गदला पानी पीने को दे। परन्तु सावधान ! मुख से एक अक्षर भी न निकलने पावै। और सुन बे लड़के ! ख़बरदार, जो इससे कुछ भी बात चीत की है तो जीता न छोड़ूंगा।" यह कह कर बूढ़ा पहाड़ी पगडंडी से गङ्गातट की ओर उतरने लगा और उसके जाने पर इन्दुमती मुसक्या कर युवा का हाथ थाम्हे हुई कुटी के भीतर गई और वहां जाकर उसने पिता की आज्ञा को मेट कर सड़े गले फल और गदले पानी के बदले अच्छे अच्छे मीठे फल और सुन्दर साफ़ पानी युवक को दिया। और युवक के बहुत आग्रह करने पर दोनों ने साथ फलाहार किया। फिर दोनो बुड्ढे के आने में देर समझ बाहर चांदनी में एक साथ ही चट्टान पर बैठ बातें करने लगे।

आधी रात जा चुकी थी, वन में चारों ओर भयानक बनैले जंतुओं के गरजने की ध्वनि फैल रही थी। चार आदमी हाथ में तलवार और बरछा लिए कुटी के चारों ओर पहरा दे रहे थे। कुटी से थोड़ी ही दूर पर एक ढालुआं चोटी पर दस बारह आदमी बैठे बातें कर रहे थे। चलिए पाठक ! देखिए ये लोग क्या क्या बातें करते हैं। अहा ! यह देखिए ! इन्दुमती का पिता एक चटाई पर बैठा है और सामने दस बारह आदमी हाथ बांधे ज़मीन पर बैठे हैं। थोड़ी देर सन्नाटा रहा, फिर बूढ़े ने कहा—

"सुनो भाइयो ! इतने दिनों पीछे परमेश्वर ने हमारा मनोरथ पूरा किया। जो बात एक प्रकार से अनहोनी थी सो आप से आप ही हो गई। यह परमेश्वर ने ही किया। नहीं तो विचारी इन्दुमती का बेड़ा पार कैसे लगता? देखो, जिस युवक की रखवाली के लिये आज तीसरे पहर मैंने तुम लोगों से कहा था, वह अजयगढ़ का राजकुमार, या यों कहो कि अब राजा है। इसका नाम चन्द्रशेखर है। इसके पिता राजशेखर को उसी बेईमान काफ़िर इब्राहिम लोदी ने दिल्ली में बुला, विश्वासघात कर मार डाला था; तब से यह लड़का इब्राहिम की घात में लगा था। अभी थोड़े दिन हुए जो बाबर से इब्राहिम की लड़ाई हुई है, इसमें चन्द्रशेखर ने भेस बदल और इब्राहिम की सेना में घुसकर उसे मारडाला। यह बात कहीं एक सेनापति ने देखली और उसने चन्द्रशेखर का पीछा किया। निदान यह भागा और कई दिन पीछे उसे द्वन्द-युद्ध में मार और अपने घोड़े को गवां, राह भूल कर अपने राज्य की ओर न जाकर इस ओर आया और कल मेरी कन्या का अतिथि बना*। आज उसने यह सब ब्योरा जलपान करते करते इन्दुमती से कहा है, जिसे मैंने आड़ में खड़े सब सुना। वे दोनो एक दूसरे को जी से चाहने लगे हैं। तो इस बात के अतिरिक्त और क्या कहा जाय कि परमेश्वर ही ने इन्दुमती का जोड़ा

*इब्राहिम लोदी सिकन्दर लोदी का बेटा था। यह ५ ज़िकाद सन् ८५६ हिजरी में पैदा हुआ, और ५६ वर्ष सोलह दिन का था जब दिल्ली के तख़्त पर २१ ज़िकाद सन् ६१५ हिजरी को बैठा था। उसके सिक्के पर एक ओर कलमा और दूसरी ओर उसका नाम था। बाबर की लड़ाई में ७ रज्जब सन् ६३२ हिजरी में (१५२६ ई०) मारा गया और उसकी लाश पानीपत में गाड़ी गई।

भेज दिया है और साथ ही उस दयामय ने मेरी भी प्रतिज्ञा पूरी की।" इतना सुन कर सभों ने जयध्वनि के साथ हर्ष प्रकट किया, और बूढ़ा फिर कहने लगा—"मेरी इन्दुमती सोलह वर्ष की हुई, अब उसे कुआरी रखना किसी तरह उचित नहीं है और ऐसी अवस्था में जब कि मेरी प्रतिज्ञा भी पूरी हुई और इन्दुमती के योग्य सुपात्र वर भी मिला। उसने इन्दुमती से प्रतिज्ञा की है कि 'प्यारी, मैं तुम्हें प्राण से बढ़कर चाहूंगा और दूसरा विवाह भी न करूंगा, जिसमें तुम्हें सौत की आग में जलना न पड़े।' भाइयो! देखो स्त्री के लिये इससे बढ़ कर और कौन बात सुख देनेवाली है? मैंने जो चन्द्रशेखर को देखकर इतना क्रोध प्रकट किया था उसका आशय यही था कि यदि दोनों में सच्ची प्रीति का अंकुर जमेगा तो दोनो का ब्याह कर दूंगा, और जो ऐसा न हुआ तो युवक आप डर के मारे भाग जायगा। परन्तु यहां तो परमेश्वर को इन्दुमती का भाग्य खोलना था और ऐसा ही हुआ। बस, कल ही मैं दोनों का ब्याह करके हिमालय चला जाऊंगा और तुम लोग बर कन्या को उनके घर पहुंचा कर अपने अपने घर जाना। बारह वर्ष तक जो तुम लोगों ने तन मन धन ते मेरी सेवकाई की, इसका ऋण सदा मेरे सिर पर रहेगा और जगदीश्वर इसके बदले में तुम लोगों के साथ भलाई करेगा।" इतना कह कर बुड्ढा उठ खड़ा हुआ और वे लोग भी उठे। बुड्ढा कुटी की ओर घूमा और वे लोग पहाड़ी के नीचे उतर गए।

अहा! प्रेम! तू धन्य है!!! जिस इन्दुमती ने आज तक देवता की भांति अपने पिता की सेवा की, और भूल कर भी कभी उसकी आज्ञा न टाली, आज वह प्रेम के फन्द में फंस कर उसका उलटा बर्ताव करती है। वृद्ध ने लौट कर क्या देखा कि दोनो कुटी के पिछवाड़े चांदनी में बैठे बातें कर रहे हैं। यह देख वह प्रसन्न हुआ और कुटी में आकर सो रहा। पर हमारे दोनो नये प्रेमियों ने बातों ही में रात बिता दी। सवेरा होते ही युवक कुठार ले लकड़ी काटने लगा, और इन्दुमती सारा काम छोड़ कर खड़ी खड़ी उसके मुख की ओर देखने लगी। थोड़ी ही देर में युवक के सारे शरीर से पसीना टपकने लगा और चेहरा लाल हो आया। इतने ही में वृद्ध ने आकर गर्ज कर कहा—"ओ लड़के! बस, पेड़ पीछे काटियो, पहिले जो लकड़ियां कटी हैं, उन्हें उठा कर कुटी के पिछवाड़े ढेर लगा दे।"

इतना कह कर बुड्ढा चला गया और युवक लकड़ी उठा-उठा कर कुटी के पिछवाड़े ढेर लगाने लगा। उसका इतना परिश्रम इन्दुमती से न देखा गया और बड़े प्रेम से वह उसका हाथ थाम कर बोली "प्यारे, ठहरो, बस करो, बाकी लकड़ियां मैं रख आती हूं। हाय, तुम्हारा परिश्रम देखकर मेरी छाती फटी जाती है। प्यारे, तुम राजकुमार होकर आज लकड़ी काटते हो? ठहरो, तुम सुस्ता लो।'

युवक ने मुसक्याकर कहा—"प्यारी, सावधान, ऐसा भूलकर भी न करना, अपने पिता का क्रोध याद करो, अब की उन्होंने तुम्हें लकड़ी उठाते या हमसे बोलते देख लिया तो सर्वनाश हो जायगा।"

इतना सुनकर इन्दुमती की आंखों में आंसू भर आए। वह बोली—"प्यारे, मेरे पिता का तो बहुत अच्छा स्वभाव था, सो तुम्हें देखते ही एकदम से ऐसा बदल क्यों गया? वह तो ऐसे नहीं थे, अब उन्हें क्या हो गया? आज तक मैंने उन्हें कभी क्रोध करते नहीं देखा था। खैर, जो होय, पर तुम ज़रा ठहरो, दम ले लो, तब तक मैं इन लकड़ियों को फेंक देती हूं।"

युवक ने कहा "प्यारी, क्या राक्षस हूँ कि अपनी आंखों के सामने तुम्हें लकड़ी ढोने दूंगा? हटो, ऐसा नहीं होगा। सच जानो तुम्हें देखने से मुझे कुछ भी कष्ट नहीं जान पड़ता।"

इन्दुमती ने उदास होकर कहा "हाय प्यारे, तुम्हारा दुख देखकर मेरे हृदय में ऐसी वेदना होती है कि क्या कहूं, जो तुम इसे जानते तो ऐसा न कहते।"

पीछे लता मंडप में खड़े खड़े वृद्ध ने दोनों की बातें सुन कर बड़ा सुख माना, पर अंतिम परीक्षा करने के अभिप्राय से हाथ में नंगी तलवार ले, सामने आ, गरज कर कहा—"इन्दुमती, कल से आज तक तैंने मेरी सब बातों का उलटा बर्ताव किया। फल और जल की बात याद कर, और तू फिर इससे बातें करती है? देख अब तेरा सिर काटता हूं।" यह कह कर ज्योंही वह इन्दुमती की ओर बढ़ा कि चट युवक उसके पांव पकड़ कर कहने लगा—"आप अपने क्रोध को दूर करने के लिए मुझे मारिए, सब दोष मेरा है, मैं ही दण्ड के योग्य हूं, यह सब तरह निरपराधिनी है। मेरा सिर आपके पैरों पर है, काट लीजिए, पर मेरे सामने एक निरपराध लड़की का प्राण न लीजिए।"

वृद्ध ज्योंही अपनी तलवार युवक की गर्दन पर रक्खा चाहता था कि इन्दुमती पागल की तरह उसके चरणों पर गिर बिलख बिलख कर रोने और कहने लगी—"पिता, पिता, जो मारना ही है तो पहिले मेरा सिर काट लो तो फिर पीछे जो जी में आवे सो करना।"

इतना सुन बुड्ढे ने तलवार दूर फेंक दी और दोनों को उठा गले लगा कर कहा—"बेटी इन्दुमती! धीरज धर, और प्रिय वत्स! चन्द्रशेखर! खेद दूर करो। मैंने केवल तुम दोनो के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए इस प्रकार क्रोध का भाव दिखलाया था। यदि तुम दोनो का सच्चा प्रेम न होता तो क्यों एक दूसरे के लिए जान पर खेल कर क्षमा चाहते। और सुनो, मैंने छिप कर तुम्हारी सब बातें सुनी हैं। तुमसे बढ़ कर संसार में दूसरा कौन राजकुमार है जो इन्दुमती के बर बनने योग्य होगा। सुनो, देवगढ़ मेरे पुरुषाओं की राजधानी थी। जब कि इन्दुमती चार वर्ष की थी, पापी इब्राहिम ने मेरे नगर को घेर यह कहलाया कि "या तो अपनी स्त्री (इन्दुमती की मा) को भेज दो या जङ्ग करो।" यह सुन कर मेरी आंखों में खून उतर आया और उसके दूत को मैंने निकलवा दिया। फिर क्या पूछना था? सारा नगर यवन हत्यारों के हाथ से स्मशान हो गया। मेरी स्त्री ने आत्म-हत्या की, और मैं उस यवन-कुल-कलंक से बदला लेने की इच्छा से चार वर्ष की अबोध लड़की को ले इस जङ्गल में आकर रहने लगा। मेरे कृतज्ञ सरदारों में से पचास आदमियों ने सर्वस्व त्याग कर मेरा साथ दिया और आज तक मेरे साथ हैं। उन्हीं लोगों में से कई आदमियों को तुमने कल देखा था। बेटा चन्द्रशेखर! बारह वर्ष हो गए पर ऐसी सावधानी से मैंने इस लड़की का लालन-पालन किया और इसे पढ़ाया लिखाया कि जिसका सुख तुम्हें आप आगे चल कर इसकी सुशीलता से जान पड़ैगा और देखो, मैंने इसे ऐसे पहरे में रक्खा कि कल के सिवा और कभी इसने मुझे छोड़कर किसी दूसरे मनुष्य की सूरत न देखी। मैंने राजस्थान के सब राजाओं से सहायता मांगी और यह कहलाया कि जो कोई दुष्ट इब्राहिम का सिर काट लावेगा उसे अपनी लड़की ब्याह दूंगा। पर हा! किसी ने मेरी बात न सुनी और सभी मुझे पागल समझ कर हंसने लगे। अन्त में मैंने दुखी होकर प्रतिज्ञा की कि जो कोई इब्राहिम को मारेगा उसी से इन्दुमती ब्याही जायगी, नहीं तो यह जन्म भर कुआरी ही रहेगी। सो परमेश्वर ने तुम्हारे हृदय में बैठ कर मेरी प्रतिज्ञा पूरी की। अब इन्दुमती तुम्हारी हुई। और आज मैं बड़े भारी बोझ को उतार कर आजन्म के लिये हलका हो गया।"

इतना कह बुड्ढे ने सीटी बजाई और देखते देखते पचास जवान हथियारों से सजे घोड़ों पर सवार आ खड़े हुए। उनके साथ एक सजा हुआ घोड़ा चन्द्रशेखर के लिये और एक सुन्दर पालकी इन्दुमती के लिये थी। उसी समय बुड्ढे ने दोनों का विवाह कर उन वीरों के साथ बिदा किया और आप हिमालय की ओर चला गया।

अहा! जो इन्दुमती इतने दिनों तक बनबिहंगिनी थी, वह आज घर के पिंजरे में बंद होने चली। परमेश्वर की महिमा का कौन पार पा सकता है!

१९००

❀ ❀ ❀

चन्द्रलोक की यात्रा

बाबू केशवप्रसादसिंह

सबसे पहिले हम अपने पाठकगणों से यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि ये महाशय जिनकी चिट्ठी हम आज प्रकाशित करते हैं रत्नधाम नामक नगर के सुयोग्य निवासियों में से थे। इनको वहां वाले हंसपाल कहकर पुकारा करते थे। ये बिचारे मध्यम श्रेणी के मनुष्य थे। आय से व्यय अधिक होने के कारण सदा दुःख में रहते। पर फिर भी चित्त को नहीं रोक सकते थे, इसलिए ऋण लेकर काम चलाते। एक ठौर वह स्वयं अपनी चिट्ठी में लिखते हैं कि "मैं व्यापार मन्द हो जाने के कारण शीघ्र ही दरिद्र हो गया।" और जब इन पर अत्यन्त तगादा होने लगा तो इन्होंने अपनी जान बचाने के लिए मूसे के बिल के समान कोई संरक्षित स्थान न पाकर इस पृथ्वी-तल को छोड़ देने के लिए मन में ठान लिया।

उस चिट्ठी की नक़ल यह है:—

ज्योतिष विद्यालय के सभापति महाशय !

कदाचित् आप महाशयों को स्मरण होगा कि रत्नधाम नगर में एक हंसपाल नामक शिल्पकार भाथी बनाने वाला रहा करता था, जो कि और तीन मनुष्यों के साथ वहां से न जाने कहां अलोप हो गया था। ये चार आदमी किस रीति से कहां चले गये सो किसी की भी समझ में न आया। अब क्षमा पाने की आशा पर मैं लिखता हूं कि मैं ही वह हंसपाल नामक मनुष्य हूं। मेरे सहवासी इससे भली भांति अभिज्ञ होंगे कि चालीस वर्ष लों मैं सौर किरीट नामक महल्ले में एक छोटे से घर में निवास करता था। मेरे पूर्वज भी न जाने किस समय से इसी घर में रहते आते थे और इसी भाथी मरम्मत करने के चलते व्यापार में दृढ़ता से लगे रहते थे।

परन्तु शीघ्र ही राजनैतिक स्वतन्त्रता तथा मनुष्य समाज संशोधकों की बड़ी-बड़ी वक्तृताओं का प्रभाव हम सब के व्यापार पर पड़ने लगा। जो लोग पहिले अच्छे ग्राहकों में से थे, अब उनको हमारे तक आने का अवकाश भी नहीं मिलता था। मैं शीघ्र अतिशय कङ्गाल हो गया। मुझे अपनी स्त्री तथा बाल बच्चों के लिये भोजनादि का जुहाना असहनीय दिखाई देने लगा। और मुझे अब नित्य यही चिन्ता बनी रहती कि क्यों कर इस जीवन से छुटकारा पाऊंगा। इसी बीच में तगादगीरों का इतना तगादा आरम्भ हुआ कि सांस लेना भी कठिन हो गया। मेरा घर प्रातःकाल से लेकर रात्रि के समय तक इन लोगों से घिरा रहता था। परन्तु तीन मनुष्य विशेषतः मुझे कष्ट देते और नित्य मेरे द्वार पर बने रहते थे, तथा नियमानुसार मुझे दण्ड दिलाने की धमकी देते थे। मैंने अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब कभी ये मेरे पंजे में आ जायंगे इनसे अवश्य बदला लूंगा और केवल इसी आशा के भविष्यत् आनन्द ने मुझे स्वयं प्राणघात करने से रोका था। अब जहां तक हो सकता था मैं अपने क्रोध को छिपाता था और नम्रतापूर्वक उन्हें शीघ्र कौड़ी कौड़ी चुका देने का भरोसा दिया करता था।

एक दिन संयोगवश मैं उनसे पीछा छुड़ा बड़ी व्याकुलता से एक गली में निष्प्रयोजन घूम रहा था, कि अकस्मात् मैं एक पुस्तक की दूकान के सामने आ खड़ा हुआ और एक कुर्सी पर जो कि पास ही ग्राहकों के लिए रक्खी हुई थी मैं बैठ गया। और फिर निष्प्रयोजन एक पुस्तक उठा देखने लगा। यह एक ज्योतिष-विद्या की छोटी सी पुस्तक निकली, जिसको बर्लिन नगर के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने लिखा था।

उस पुस्तक भर में कुछ ऐसी बातें थीं जिनका एक अद्भुत प्रभाव मेरे हृदय पर पड़ा। और ज्यों-ज्यों मैं उस विषय पर अधिक सोचता था मेरे हृदय में उसकी रुचि बढ़ती ही जाती थी।

प्रातःकाल उठ आवश्यक क्रियाओं से छुट्टी पा मैं फिर पुस्तक की दुकान को चला गया और मैंने दो तीन पुस्तकें शिल्प विद्या तथा ज्योतिष विद्या की मोल ले लीं। और घर पहुंचकर मैं इन्हीं पुस्तकों के पढ़ने में लवलीन हो गया। शीघ्र ही मैं इन विद्याओं में ऐसी दक्षता को प्राप्त हो गया कि मैं अपने एक विशेष उद्देश्य में अपने

को पहिले ही से सफल विचारने लगा। इस बीच में मैं उन तीन महाजनों को धीरज दिलासा देता रहा और बड़े यत्न से मैंने अपना थोड़ा माल असबाब बेचकर उन्हें कुछ रुपया दे प्रसन्न कर लिया। बाकी के लिए मैंने उनसे प्रतिज्ञा की कि मैंने एक उपाय सोचा है, उसमें कृतकार्य होने पर वह भी चुका दूंगा और उनको प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रखने के लिए मैंने उस काम में उनसे सहायता के लिए प्रार्थना की। इस ढंग से मैंने उनको राजी कर लिया।

इस प्रकार सब प्रबन्ध करके मैंने अपनी स्त्री को भी इस काम में सन्नद्ध कर लिया और सब बात गुप्त रखने के लिए उसको चेता दिया। तब मेरे पास जो कुछ माल असबाब शेष रह गया था उसे बेचना आरम्भ किया, और झूठे बहानों पर भिन्न भिन्न पुरुषों से ऋण लेने लगा। यों द्रव्योपार्जन करके मैंने बढ़िया कमरखी मलमल के बारह बारह गज के टुकड़े मोल लिए, तथा सुतली की डोरियां, डालियों के बने हुए बड़े तथा गहरे टोकरे, बढ़ियां बारनिश। सारांश यह कि एक बड़े बेलून के लिए जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उन्हें जुहा लिया। यह सब सामग्री मैंने अपनी स्त्री को दे उसे बनाने की रीति इत्यादि से भली भांति विज्ञ कर दिया। इस बीच में मैंने उन डोरियों से बटकर बड़े-बड़े रस्से तैयार किये और फिर उन यंत्रों तथा पदार्थों को मोल लेकर जुहाने लगा जिनकी आवश्यकता ऊपरी वायुमंडल के जांचने के लिए पड़ती थी। तब रत्नधाम से कुछ दूरी पर एक एकान्त स्थान पर पांच बड़े-बड़े पीपे, टीन की दस फुट लम्बी छ: नलियां, एक धातु सम्बन्धी पदार्थ-विशेष (जिसका नाम हम अभी नहीं लिखेंगे) और कई भांति के तेजाब रखवा दिये। इन तेजाबों से जो गैस* मैं बनाने को था उसके समान गैस आज पर्य्यन्त कभी किसी ने नहीं बनाया था और कभी किसी ने उससे यह काम लेने का विचार भी नहीं किया था। यह एक बेर स्वरूप परिवर्तन करके फिर पूर्व स्वरूप धारण नहीं कर सकता था और इसकी घनता (density) लोग हाइड्रोजिन से ३७·४ गुना कम जानते थे। जिस स्थान पर मैंने छोटे पीपे बेलून में गैस तैयार हो लेने तक रखने चाहे थे, उसी के समीप ही मैंने कई एक गड़हे खोद दिये। और इन छोटे गड़हों के बीच में जो एक बड़ा गड़हा था उसे मैंने कुछ अधिक गहरा खोदा था। इन पांच छोटे गड़हों में मैंने पचास पचास पाउन्ड, तथा बड़े में एक सौ पचास पाउन्ड, बारूद रख दिया और इन गड़हों को एक रस्सी द्वारा मिला रक्खा और उसके एक सिरे पर एक बड़ी दियासलाई रख दी, जिसका एक मुंह कुछ मिट्टी से ऊपर निकलता था, और बाकी सब ढक दिया गया था। इन सब को ठीक करके ऊपर से पीपे रख दिये। इन सामग्रियों के अतिरिक्त मैंने ग्रीम का बनाया हुआ वायु के जमाने का नवीन यंत्र वहीं एक कोने में छिपा दिया। इस यंत्र का मुझे बहुत कुछ परिशोधन करना पड़ा, तब यह मेरे काम का हुआ। मेरा बेलून शीघ्र बन कर तैयार हो गया। प्रत्येक वस्तु जुह जाने पर मैंने अपनी स्त्री से शपथ ले ली वह यह भेद किसी से न कहेगी, और मैंने भी उससे प्रतिज्ञा की कि मैं भी शीघ्र लौट आने की चेष्टा करूंगा। फिर जो थोड़ा सा रुपया मेरे पास बच गया था उसे दे मैं उससे बिदा हुआ। जब मैं उससे बिदा हुआ उस समय रात्रि बड़ी अंधेरी थी। और उन तीनो महाजनों की सहायता से बेलून तथा कार[1] इत्यादि को लिए हुए उस स्थान पर पहुंचा जहां दूसरी सामग्री रख दी थी। और उन सबको ज्यों का त्यों पाकर अपने काम में प्रवृत्त हो गया। उस दिन अपरैल महीने की पहिली तारीख थी (जिसे ईसाईमत वाले "फूल्स डे" भी कहते हैं)। कोई चार घण्टे के समय में मैंने देखा कि बेलून यथोचित गैस से फूल गया है। तब मैंने कार को उसमें बांध दिया और इसमें एक टेलिस्कोप[2], एक बैरोमीटर[3], एक थर्मोमीटर[4], एक एलोक्ट्रोमीटर[5], एक परकाल, एक दिग्दर्शक, एक सेकन्ड (पल) बतलाने वाली घड़ी, एक घंटी, एक तुरही, एक वायुशून्य शीशे का गेंद, जिसका मुंह कार्क से भली भांति बन्द कर दिया था, एक वायु जमाने का यन्त्र, पीने का बहुत सा पानी, और अपने भोजन इत्यादि के पूरे सामान से उसको परिपूर्ण कर लिया और इसमें एक बिल्ली और एक जोड़ा कबूतर

*एक प्रकार का वाष्प

१. कार उस खटोले को कहते हैं जो बेलून से लटका रहता है।

२. दूरदर्शक यंत्र। ३. वायुमापक यंत्र। ४. शीतोष्ण मापक यन्त्र। ५. विद्युतमापक यन्त्र।

भी मैंने रख लिए थे। अब प्रातःकाल का समय आ पहुंचा था, क्योंकि पौ फटे देर हो चुकी थी। मैंने सोचा कि अब विलम्ब न करना चाहिए और चल देना ही परमोत्तम होगा। भूमि पर एक सुलगता हुआ सिगार स्वयं गिराकर और फिर उसको उठाने के बहाने से झुक कर मैंने दियासलाई में आग लगा दी। तत्क्षण कूद कर मैं कार में जा बैठा और फिर उस रस्सी को जो मेरे बेलून को पृथिवी के संग बांधे थी, शीघ्र काट दिया। इसके काटते ही एक झपकी मात्र में मेरा बेलून पृथिवी से ऊपर की ओर अत्यन्त शीघ्रता से चढ़ गया। मेरे ऊपर चढ़ते समय बेरोमीटर तीस इंच और थर्मामीटर १६ डिगरी पर था। मेरा बेलून अभी ५० गज भी ऊंचा न चढ़ा होगा कि पीछे आग का भभाका बड़ी भयानक रीति से आता दिखलाई पड़ा और फिर उसमें मिट्टी, कङ्कड़ इत्यादि भी उड़ते दिखलाई पड़े। यह भयंकर दृश्य देख कर मैं ऐसा भयभीत हुआ कि कार में गिर पड़ा और मारे भय के कांपने लगा। पड़ा पड़ा चित्त में विचारता रहा कि यदि इसी प्रकार मैं भयभीत हूंगा तो काम कैसे चलेगा। क्योंकि यह तो अभी श्रीगणेश ही है। जब मैं कुछ चैतन्य हुआ तो समझ गया कि यह सब उपद्रव उस बारूद के उड़ने की धमक से था जिसे मैंने उन पीपों में पृथिवी के तले उन दुष्टों के प्राणबध के हेतु रख दिया था और जिसमें मैंने जान कर ऊपर उड़ती समय आग लगा दी थी। बेलून पहिले तो सिमटा, पर शीघ्र ही फैल कर गोलाकार हो गया। फिर बड़ी तेजी से चक्कर खाने लगा। और अन्त में एक मतवाले के समान लड़खड़ा लड़खड़ा कर ऐसी शीघ्रता से घूमने लगा कि मैं कार की एक कोर पर मुंह के बल बड़े जोर से गिरा और एक रस्सा जो वहीं पड़ा था उसी में मैं बझ गया। उस समय मेरी दशा जैसी भयंकर थी उसका यथायोग्य ध्यान में लाना सर्वथा असम्भव है। मैं घबड़ा-घबड़ा कर सांस लेने को मुंह बाता था। किसी पीड़ित व्यक्ति के समान मेरी नस-नस टूट रही थी। जान पड़ता था कि नेत्रों से ढेले निकले पड़ते हैं। और रह रहकर मेरा जी ऐसा मचलता था कि मैं व्याकुल हो जाता था। इसके पश्चात मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और अचेत हो गया। इस रीति से मैं कोई १५ मिनट लों लटका झूलता रहा। इतनी बेर लों लटके रहने से जो रक्त मेरे सिर में एकत्रित हो गया था, अब अपने उचित मार्ग में जाने लगा। अब मैं फिर एक बेर बड़े बेग से ऊपर उछला और फिर उसी कोर को पकड़कर कलैया खाने लगा और ऐसा करता करता सिर के बल कार के बीच में बड़े जोर से गिरा। कुछ कालोपरान्त जब मैं संभला तो बेलून की चिन्ता पड़ी और ध्यानपूर्वक इधर उधर देखने से मालूम हुआ कि वह प्रत्येक विषय में दुरुस्त है। कहीं कुछ बिगड़ा नहीं है। मेरे यंत्र बोझे तथा भोजनादि सभी संरक्षित हैं, क्योंकि मैंने उन सब को अपने अपने स्थान पर ऐसी सावधानी से रक्खा था कि एक ऐसी छोटी घटना से उनमें कुछ हानि नहीं पड़ सकती थी। इस समय मैंने अपनी घड़ी निकाली और देखने पर मालूम हुआ कि छ बजा है। मेरा बेलून बड़े बेग से ऊपर चढ़ रहा था और बेरोमीटर देखने से जान पड़ा कि हम लगभग साढ़े तीन मील ऊपर चढ़ आये हैं। नीचे देखने से ठीक मेरे बेलून के तले समुद्र में एक छोटा काला पदार्थ देख पड़ा जिसका आकार लम्ब के समान था। मैंने शीघ्र ही टेलिस्कोप निकाला और तब मालूम हुआ कि वह पदार्थ एक जंगी जहाज है और उसके चारों ओर जलामयी दिखलाई देती है। कहीं पृथ्वी नाम मात्र को भी नहीं दिखाई देती।

तीन साढ़े तीन मील की उंचाई पर पहुंच कर मैंने अपने कार से कुछ बोझ नीचे फेंका, पर उससे मेरे बेलून का बेग न बढ़ा। अबलों मुझे कोई शारीरिक पीड़ा नहीं मालूम होती थी। स्वतन्त्रता पूर्वक मैं सांस लेता था और सिर में भी कोई पीड़ा नहीं जान पड़ती थी। बिल्ली भी मेरे कोट पर बड़े आनन्द से बैठी थी और कनखियों से कबूतरों को देख रही थी। इन कबूतरों के पैर मैंने बांध दिये थे कि जिसमें वे भाग न जांय और वे सब भी बैठे दाने चुग रहे थे जो मैंने उनके लिए कार में फेंक दिये थे।

साढ़े ६ बजे बेरोमीटर देखने से मालूम हुआ कि मैं लगभग ५ मील ऊंचे चढ़ आया हूं। मैं यह जान कर बड़ा प्रसन्न हुआ। रेखागणित की गणना से मैं जान सकता था कि पृथ्वी का कितना क्षेत्रफल मेरी दृष्टि के सामने था। सारे भूगोल का सोलहवां हिस्सा मैं देख रहा था। समुद्र एक स्वच्छ दर्पण के समान मुझे देख पड़ता था। जहाज जो मैंने अभी देखा था, उसका अब कहीं पता न था। अब ठहर ठहर कर मेरे सिर में कुछ पीड़ा मालूम होने लगी और विशेषकर कानों के समीप बहुत पीड़ा थी।

पर तिस पर भी मैं स्वतंत्रता पूर्वक सांस ले रहा था। मेरे कबूतर और बिल्ली भी दुखी नहीं दिखाई देती थीं।

अब मैं बड़े बेग से ऊपर चढ़ रहा था और सात बजे बेरोमीटर देखने से मालूम हुआ कि मैं नौ साढ़े नौ मील से ऊपर निकल आया हूं। अब मुझे सांस लेने में बड़ी कठिनाई जान पड़ने लगी। मेरे सिर में भी अब बड़ी पीड़ा थी। अपने गालों पर कुछ चिपचिपाहट का बोध होने पर हाथों से टोने से मालूम हुआ कि कान के पर्दों से रुधिर प्रवाह जारी है। इस समय केवल अबिचार से मैंने पन्द्रह पौन्ड का बोझ नीचे गिरा दिया। इससे बेलून का बेग अधिकतर बढ़ गया और मुझे इससे भी अधिक पतले वायु-मण्डल में ले गया, जिसका परिणाम मेरे उद्योग के लिए नाशक हुआ, तथा मेरे लिए भी प्राणघातक सरीखा निकला।

मैं पांच मिनट तक बिलकुल बेसुध रहा। मेरी नस नस जकड़ गई थी। और जब इसमें कुछ कमी भी हुई तो बड़ी देर के बाद सांस लेता था और वह भी हांपता हुआ मुंह खोल के तब कहीं सांस ले सकता था। अब मेरी नासिका तथा मेरे नेत्रों से भी रुधिर बह रहा था और प्रवाह बड़े बेग से निकलता जाता था। कबूतर भी बड़े दुःख में थे और भाग जाने की चेष्टा कर रहे थे। बिल्ली बड़ी दीनता से म्यूं म्यूं कर रही थी। उसकी जीभ मुंह से बाहर लटक रही थी, मानो किसी विष के प्रभाव से इधर उधर लड़खड़ा रही हो। अब उस बोझ के फेंक देने की मूर्खता स्वयं मुझे खटकने लगी। अब मुझे मृत्यु एक एक क्षण में आती देख पड़ती थी। शारीरिक पीड़ा तथा दुःख के प्रभाव से न तो मैं अपने बचने की चेष्टा कर सकता था और न कोई युक्ति सोच सकता था। मेरे सिर की पीड़ा प्रतिक्षण बढ़ती ही जाती थी। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि कुछ कालोपरान्त मैं उन्मत्त हो जाऊंगा। मैं कार में पड़ा अपना चित्त एकाग्र कर रहा था कि मुझे यह ध्यान आया कि किसी प्रकार देह में से कुछ रुधिर निकाल दूं। मेरे पास कोई शलाका न थी जिससे यह काम सहज से करता, इसलिए अपनी छुरी से मैंने अपनी बाईं बांह की एक रग काट दी। रुधिर प्रवाह का निकलना था कि मुझे एक प्रकार का सुख मिलने लगा और थोडी देर में जब एक कटोरा रुधिर से भर गया तो मेरी पीड़ा बहुत कम हो गई। अभी मैंने पैरों के बल उठने की चेष्टा न की थी। अपने घाव को भली प्रकार चिथड़े से बांधकर मैं लेट रहा। कोई पाव घण्टे लेटे रहने के उपरान्त जब मैं उठा तो मुझे किसी प्रकार की पीड़ा नहीं मालूम देती थी। सांस लेने का दुख बहुत कम हो गया था और मैंने विचारा कि अब मुझे शीघ्र ही वायु जमाने के यन्त्र द्वारा सहायता लेनी पड़ेगी। मेरी बिल्ली मेरे कोट से सटी बैठी थी। जब मैं पीड़ित कार में पड़ा था मेरी बिल्ली ने तीन बच्चे जने। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह तीन जीव मानों मेरे साथी यात्रियों की संख्या में परमेश्वर की ओर से बढ़ाये गये। पर जो कुछ हो, मैं इस संख्या वृद्धि पर प्रसन्न था। मेरा यह विचार था कि पृथ्वीतल पर जो वायु का दबाव मनुष्य-देह पर पड़ता है, उसमें कमी होना ही मानों इन नाना प्रकार के दुःख पीड़ाओं का कारण है। और अब यदि इन बच्चों को कुछ पीड़ा हुई तो मैं समझूंगा कि मेरा विचार मिथ्या है।

आठ बजे के उपरान्त मैं भूमितल से सत्रह मील ऊपर चढ़ आया था, जिससे मुझे मालूम हुआ कि मेरे बेलून का बेग अब बहुत बढ़ गया है और यह भी सिद्ध था कि यदि मैं उन बोझों को नीचे न फेंकता, तो भी वेग की कुछ वृद्धि अवश्य होती। रह रह कर मेरे सिर और कान में बहुत पीड़ा मालूम देती थी। और मेरे नासिका से रुधिर भी बहने लगता था। पर पहिले से अब पीड़ा बहुत कम थी। मैं शीघ्र शीघ्र सांस लेता था और प्रति बार सांस लेने में मुझे छाती जकड़ने की पीड़ा जान पड़ती थी। अब मैंने कनडेन्सर, हवा को जमाने अथवा घनी करने वाला यन्त्र निकाला और उसे शीघ्र काम करने के योग्य बना दिया।

उन कबूतरों को इस समय बड़ी पीड़ा में देख उनको स्वतंत्र कर देने का मेरा विचार हुआ। इसलिए मैंने एक का बन्धन खोला और उसको विकर वर्क के कोर पर धर दिया। वह बड़ा बेचैन जान पड़ता था और अचम्भे से अपने चारों ओर देख रहा था। कभी पंख फड़फड़ाता, कभी गुटक गुटक कर बोलता था। यह सब कुछ करने पर भी वह कार को छोड़कर बाहर नहीं जाया चाहता था। अन्त में मैंने उसे उठा लिया और अपने बेलून से

कोई छ हाथ की दूरी पर बड़े बेग से लोका दिया। उसने नीचे उतरने की कोई चेष्टा न की और मेरे पास आ जाने का बड़ा उद्योग करता रहा और साथ ही बड़े जोर से चीखता जाता था। अन्त में बेलून के कोर तक पहुंचने में वह कृतकार्य हुआ। पर ज्योंही उस पर बैठा था कि उसका सिर उसकी छाती पर गिरा और वह मुर्दा हो कार में गिर पड़ा। यह विचार कि कहीं यह भी इसी प्रकार फिर मेरे पास न लौट आवे, मैंने दूसरे को नीचे की ओर अपने पूरे बल से फेंक दिया और यह देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ कि वह बड़े बेग से पंख मारता हुआ नीचे चला जा रहा है। कुछ काल में वह दृष्टि से लोप हो गया और मुझे पूरा विश्वास हो गया कि वह बिना किसी विघ्न के घर पहुंच गया होगा। बिल्ली ने, जो कि अब किसी प्रकार पीड़ित नहीं जान पड़ती थी, इस मुए कबूतर को बड़ी रुचि से खाया और खा-पीकर सो रही। उसके बच्चे बड़े हर्षित देख पड़ते थे और किसी प्रकार दुखित नहीं जान पड़ते थे। सवा आठ बजे मैंने देखा कि मैं बिना अत्यन्त कष्ट के सांस नहीं ले सकता। इसलिए कन्डेन्सर यंत्र को मैंने अपने कार के चारों ओर लगाया। अब मुझे आवश्यक जान पड़ता है कि मैं आप महाशयों को इस यंत्र का कुछ वर्णन सुनाऊं। कार को इस प्रकार इस गढ़बन्दी द्वारा घेर देने से मेरा तात्पर्य यह था कि मैं इस यंत्र द्वारा इस गढ़बन्दी में बाहर से वायु इकट्ठा करूं और उसको सांस लेने के योग्य जमा लूं। इसी अभिप्राय से मैंने एक पुष्ट, एयर टाइट और लचीला थैला बनाया। इस बड़े थैले में मानों एक प्रकार से सारा कार रख दिया गया, कार के मानो इस दीवार में तीन ओर तीन शीशे की खिड़कियां थीं, जिनसे बाहर के हर एक पदार्थ मैं भली प्रकार देख सकता था। कार के पेंदे के पास उस ढंपने में एक चौथी खिड़की थी। इससे मैं ठीक अपने नीचे समकोणगामी देख सकता था, पर अपने ऊपर शिरोबिन्दु को मैं नहीं देख सकता था और उस स्थान पर वस्त्र में चूनन होने के कारण मैं शीशा भी नहीं लगा सकता था। बगल की एक खिड़की के कुछ नीचे एक गोल छेद, जिसका व्यास तीन इंच था, कर दिया गया था। कन्डेन्सर यंत्र की बड़ी नली इस छेद में पेंच द्वारा कस दी गई। इस यंत्र में जो वायु शून्य स्थान बना दिया गया था, उसमें इसी नली द्वारा निकटवर्ती वायु का प्रवेश होता था और उस शून्य स्थान में जमकर चारों ओर कार में वह फैल जाता था। यही उपाय कई बेर करने से कार में इतना वायु एकत्र हो गया था कि जो सांस लेने के लिए बहुत था। पर इस छोटे से घिरे हुए स्थान में शीघ्र यह वायु गन्दा हो जाता, क्योंकि फेफड़े से बराबर संयोग होने से यह वायु कुछ समयोपरान्त अवश्य प्राण-नाशक हो जाता। इस कारण नीचे के एक वाल्व ढकने से यह गंदा वायु निकाल दिया गया, क्योंकि कार मे का सघन वायु बाहर के पतले वायु से शीघ्र जा मिला। कार के पूर्णतया वायु शून्य न हो जाने के भय से इसकी सफाई एक बेर पूरी नहीं की जाती थी। वाल्व का ढकना एक बेर कुछ क्षण खुले रहने के पश्चात् फिर ढांप दिया जाता था और इसी बीच में कन्डेन्सर के पम्प द्वारा बाहर से वायु आ जाता था। परीक्षा लेने के विचार से मैंने बिल्ली तथा उसके बच्चों को एक टोकरे में धरकर कार के बाहर लटका दिया था। पर वाल्व के ढकने (वह ढकना जो एक ओर खुले, उसे वाल्व कहते हैं) के समीप ही मैंने इसे लटकाया था, इस विचार से कि यदि आवश्यकता पड़े तो शीघ्र भीतर ले लूं। ज्योंही कि बाहर से सघन वायु भीतर प्रवेश करता था, यह लचीला ढकना आप ही फैल जाता था। यह प्रबन्ध करने के उपरान्त घड़ी देखने से मालूम हुआ कि नौ में दस मिनट की देरी है। इस प्रबन्ध के पूर्व जो कष्ट मुझे सांस लेने में होता था, उसका कारण जान मैं अब अपनी मूर्खता पर पछताता था। पर अब मुझे तनिक भी कष्ट न था। मैं फिर स्वतंत्रता पूर्वक सांस लेता था और जो अनेक प्रकार की पीड़ाओं से मैं पहिले दुखित था, अब वे कोई भी बाकी नहीं रहती थी। नौ से बीस मिनट पहिले बेरोमीटर देखने से मालूम हुआ कि मैं पचीस मील ऊपर चढ़ आया हूं।

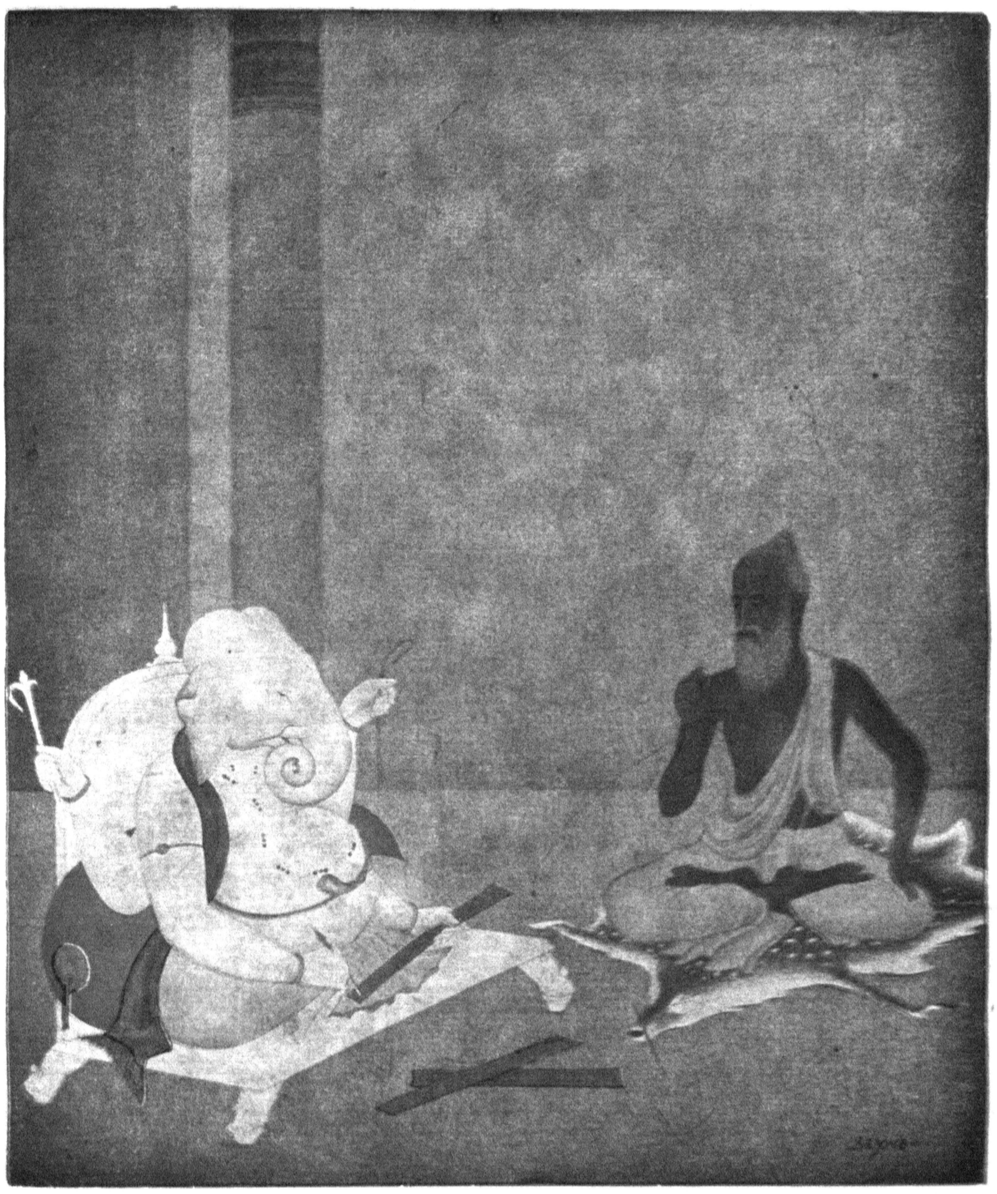
साढ़े नौ बजे के लगभग मैंने कुछ पंख वाल्व ढकने से नीचे फेंके। जैसा मैंने विचारा था वैसे वे वायु में तैरते नहीं थे, पर बड़े वेग से सीधे नीचे की ओर गिर रहे थे और कुछ क्षण उपरान्त वे दृष्टि से अलोप हो गये। पहिले मैं इस घटना का अर्थ नहीं समझा। पर कुछ विचारने पर स्पष्ट हो गया कि वायु अब इतना पतला हो गया है कि पंख के बोझ को भी नहीं संभाल सकता और इस कारण वे बड़े बेग से किसी पत्थर के समान गिरे चले

जा रहे हैं। पर यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरे बेलून का वेग इस समय अत्यन्त बढ़ गया है।

इस समय कोई नवीन बात नहीं थी। मेरे बेलून का वेग प्रति क्षण बढ़ता ही जाता था। पर खेद है कि वेग नापने का कोई यंत्र मेरे पास न था। मुझे कोई पीड़ा न थी और मैं इस समय अति प्रसन्न था और जब से मैंने रत्नधाम छोड़ा तब से ऐसी प्रसन्नता को मैं इसके पूर्व प्राप्त नहीं हुआ था। अब एक सिरे से मैं अपने सब यन्त्रों को जांच गया। फिर इसके पश्चात् कार के वायु-संशोधन में लगा। इस वायु-संशोधन में मैं प्रति चालीस मिनट के उपरान्त प्रवृत्त हो जाता था। इसमें शीघ्रता मैं अपनी आरोग्यता बनाये रखने के लिए करता था।

पांच बजे सायंकाल के मैं अपने कमरे की वायु की सफाई कर रहा था, कि इतने में मुझे बिल्ली और उसके परिवार का ध्यान आया और मैं उन्हें वाल्व से झांक कर देखने लगा। बिल्ली फिर पहिले की नाईं स्वांस लेने की पीड़ा से दुखित जान पड़ती थी। पर उसके बच्चों के विषय में मेरा अनुभव विचित्र ठहरा। मैंने सोचा था कि ये बच्चे अपनी मा से कम पीड़ित न होंगे। पर मैंने भली प्रकार देखने से यह जाना कि वे बड़े प्रसन्न थे, तथा स्वतन्त्रता पूर्वक स्वांस ले रहे थे और तनिक भी दुखित नहीं देख पड़ते थे। अब मुझे यह ज्ञान हुआ कि रासायनिक रीति से यह पतला वायु जीवन आधार के लिए कम नहीं है, और जो जीव कि इसी अवस्था में उत्पन्न हो उसे स्वास लेने में कुछ भी पीड़ा नहीं हो सकती, और जिस प्रकार एक मनुष्य को ऊपर चढ़कर स्वास लेने में पीड़ा होती है, उसी प्रकार उसे नीचे पृथिवीतल के समीप स्वांस लेने में कष्ट होगा। यह विचार कर मैंने बड़ी बिल्ली को एक कटोरे में पानी भर देना चाहा कि मेरी कमीज की बांह टोकरे में उलझ गई और एक पल में टोकरा उस परिवार के सहित अन्तरधान हो गया।

दस बजे मुझे कुछ निद्रा मालूम होने लगी और मैं सोने के लिए लेटा। पर मुझे यह ध्यान आया कि यदि मैं सोया तो मेरे कमरे का वायु कौन बदलेगा, क्योंकि एक घंटे से अधिक मैं इस वायु को नहीं पी सकता था और यदि इससे दस पांच मिनट की भी देरी हुई तो बड़ा बुरा फल देखने में आवेगा। इस विचार ने मुझे अति चिन्तित कर दिया और इन भयानक विपदों के उपरान्त मुझे यह विचार भी ऐसा भयानक देख पड़ता था कि मुझे इसकी कोई युक्ति न सूझी और मैंने नीचे उतर चलने का विचार ठहरा लिया। परन्तु यह भाव मेरे चित्त में थोड़ी देर रहा। मुझे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मनुष्य वास्तव में चाल व्यवहार का दास है और बहुत सी बातें जो उसके नित्य कर्म में माननीय हैं, उन्हें भली प्रकार विचारने से यह देखा गया है कि वे सब उसने स्वयं अपने ऊपर संचालित कर ली हैं। यह बात स्पष्ट सिद्ध थी कि मैं बिना निद्रा विश्राम के नहीं रह सकता था। पर साथ ही मैं यह कर सकता था कि प्रति घंटे उठ बैठने का अपने को अभ्यासी बना लूं, और मुझे तनिक भी कष्ट न हो। यह केवल पांच मिनट का काम था कि मैं अपने कमरे के वायु को शुद्ध कर लूं। पर कठिन केवल इतना ही था कि ठीक नियत समय पर उठूं और इस काम को पूरा करूं। अन्त में एक नवीन आविष्कार से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ; और गैलिलीयो को टेलिस्कोप यन्त्र के, अथवा स्टिफेनसन को भाप इंजन के आविष्कार पर भी इतनी प्रसन्नता न हुई होगी, जितना मैं इस अद्भुत उपाय के जानने पर गद्गद था। इतनी उंचाई पर पहुंच कर मेरा बेलून ऐसे समभाव से जा रहा था कि कार तनिक नहीं डगमगाता था। मेरे नवीन आविष्कार में यह समभाव अति लाभदायक जान पड़ा। मेरे पीने का जल बड़े बड़े पीपों में भर के पेंदे में बड़ी सावधानी से रख दिया गया था। मैंने एक पीपा खोल डाला और विकर-वर्क के कोर में दो रस्से समानान्तर बांध कर उन पर एक पीपा रख दिया, और लगभग आठ इंच उसके नीचे मैंने एक लकड़ी का टांड़ बना दिया, और ठीक उस पीपे के नीच मैंने एक मिट्टी का घड़ा रख दिया। अब मैंने उस पीपे के पेंदे में एक छेद कर दिया और एक गायदुम ठेपी लकड़ी की उसमें लगा दी। कई बेर के निकासने पैठाने के पश्चात् मैंने उसको ऐसा कस दिया कि टोप टोप पानी उसमें से चूने लगा, और इसी प्रकार टोप टोप चूने से वह घड़ा साठ मिनट में भर जाता था। अब मैंने अपना बिछौना ठीक उस घड़े के नीचे बिछाया और फिर भी इस युक्ति से कि मेरा सिर ठीक उस घड़े के नीचे था। अब यह स्पष्ट है कि एक घंटे उपरान्त घड़ा भर जाने पर पानी नीचे बहने लगता और नीचे बहने से मेरे मुख पर अवश्य



महाभारत-लेखन

(चित्रकार—रामेश्वर वर्मा)



आस असाढ़

(प्राचीन चित्र) [१६१७

गिरता। मेरा क्रोनोमीटर प्रति साठ मिनट पर मुझे जगा देता था और मैं अपने कमरे को शुद्ध कर फिर बिछौने पर चला जाता था। मेरी निद्रा में यह नियमशील विघ्न मुझे अधिक दुखदायक नहीं जान पड़ता था। और जब मैं दूसरे दिन प्रातःकाल उठा तो सात बज गये थे। और सूर्य देव मेरे दिग्मण्डल के बहुत ऊपर चढ़ आये थे।

३ अप्रैल—मेरा बेलून बहुत उंचाई पर चढ़ आया था। पृथ्वी की मध्योन्नति स्पष्ट प्रगट होने लगी थी। मेरे बेलून के नीचे सागर में कई काले काले धब्बे देख पड़ते थे जो वास्तव में टापू थे। ऊपर आकाश अत्यन्त श्याम वर्ण दिखाई देता था और तारे विशेषता से चमक रहे थे। उत्तर दिशा में बड़ी दूर दिग्मण्डल के किनारे किनारे देखने से एक पतली सफेद तथा चमकीली लकीर देख पड़ती थी, जो कि विचारने से मालूम हुआ कि ध्रुव सम्बन्धी समुद्र का बर्फानी मण्डल है। यह कौतुक देख मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और मैंने विचारा कि मैं भी यदि उत्तर दिशा की ओर गया तो एक न एक समय अवश्य ठीक ध्रुव के ऊपर पहुंच जाऊंगा।

४ अप्रैल—बिछौने से बड़ा आरोग्य तथा प्रफुल्लित उठा और समुद्र की विचित्रता देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। इसमें जो गहरा नील वर्ण पाया जाता था, वह आज नहीं था; वरन् उसके स्थान में सफेदी भूरापन झलकता था और आज इसमें इतनी चमक थी कि नेत्र चौन्धियाते थे।

५ अप्रैल—सूर्योदय की विचित्र लीला मैंने उस समय देखी जब कि सारी पृथिवी अन्धकूप में पड़ी होगी। समय पहुंचने पर प्रकाश फैल गया और मुझे फिर बर्फानी लकीर उत्तर दिशा में देख पड़ी। अब यह अति स्पष्ट देख पड़ती थी और पहिले से अधिक काले रंग की थी।

६ अप्रैल—बर्फानी लकीर को कुछ निकट देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह सिद्ध था कि बेलून यदि इसी प्रकार चला गया तो मैं शीघ्र जमे हुए समुद्र के ऊपर पहुंच जाऊंगा और फिर ध्रुव देख लेने में भी कोई सन्देह न रहेगा।

७ अप्रैल—मैं बड़े सबेरे उठा और उत्तरीय ध्रुव को देखकर अति प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैं ठीक उसके ऊपर था। पर खेद इतना ही था कि बहुत ऊपर चढ़ आने से मैं

फा० २०

उसे शुद्धता से नहीं देख सकता था। आज प्रातःकाल बेरोमीटर देखने से मालूम हुआ कि मैं समुद्रतल से लगभग ७२५४ मील ऊपर चढ़ आया हूं।

८ अप्रैल—आज मैंने पृथिवी के प्रत्यक्ष व्यास में बड़ी कमी पाई और फिर इसके रंग रूप में भी बड़ा अन्तर पड़ गया था। इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल कहीं तो फीका और कहीं अत्यन्त चमकीला देख पड़ता था और नीचे पृथिवीतल का भी कुछ हाल विशेष नहीं दिखाई पड़ता था, इस कारण कि बीच में बहुत घने मेघ छाये हुए थे।

९ अप्रैल—आज पृथिवी का व्यास बहुत घटा हुआ दिखाई देता था और उसकी सतह का रंग गहरा पीला देख पड़ता था और बेलून ठीक दक्षिण दिशा में जा रहा था और रात्रि के नौ बजे यह ठीक मेक्सिकन खाड़ी के ऊपर पहुंच गया था।

१० अप्रैल—मैं अकस्मात् आज पांच बजे प्रातः समय एक भयानक कड़क सुनकर निद्रा से चौंक पड़ा, और किसी प्रकार इसका कारण मैं नहीं समझ सका। यह कड़क क्षण मात्र रही होगी, पर मैंने पृथ्वी में कभी इसके समान शब्द नहीं सुना था, जिससे मुझे इसके विषय में अनुभव होता। पहिले तो मुझे यह भय हुआ कि कहीं मेरा बेलून न फट पड़ा हो, और मैं अब गिरा और अब गिरा यही सोच रहा था। पर सावधान होकर मैं अपने बेलून के एक एक यंत्र को जांचने लगा और बड़ा प्रसन्न हुआ जब मैंने यह देखा कि सब यंत्र यथाक्रम थे। दिन भर इस परमेश्वरी कौतुक पर सोचता रहा, पर अन्त में असन्तुष्ट हो सो रहा।

११ अप्रैल—आज मैंने पृथ्वी के व्यास में अत्यन्त कमी पाई, और आज ही पहिली बेर चन्द्रमा बहुत बड़ा देख पड़ने लगा। अब कमरे में जीवन आधार के लिए वायु जमाना बहुत कठिन हो गया था।

१२ अप्रैल—आज बेलून के मार्ग में बड़ा अन्तर पड़ गया। यद्यपि मुझे पहिले से यह मालूम था, पर इस समय प्रत्यक्ष देख कर आनन्द को प्राप्त हुआ।

१३ अप्रैल—जिस कड़क के शब्द ने मुझे दसवीं को भयभीत कर दिया था, वही भयानक कड़क आज फिर हुई। फिर बड़ी देर लों सोचता रहा, पर कुछ अनुभव न हुआ। पृथ्वी का व्यास बहुत छोटा देख पड़ता था और

अब बेलून के नीचे फैलने से केवल २५ अंश का कोण बनता था। चन्द्रमा अब मेरे शिरोविन्दु में होने से तनिक भी दिखाई नहीं देता था।

१४ अप्रैल—पृथ्वी के व्यास में कमी बढ़ती गई। आज मुझे पूरा विश्वास हो गया कि बेलून उस मार्ग पर दौड़ा जा रहा है जिससे वह चन्द्रमा के उस भाग में पहुंचेगा जो पृथ्वी से सब से कम दूरी पर है। चन्द्रमा ठीक मेरे सिर पर था और इसी से मुझे नहीं देख पड़ता था। वायु जमाने में अत्यन्त दुख उठाना पड़ता था।

१५ अप्रैल—पृथ्वी पर न तो कहीं महाद्वीपों का पता लगता था और न कहीं समुद्र का चिन्ह देख पड़ता था। बारह बजे के लगभग तीसरी बेर मुझे फिर वही कड़क सुन पड़ी। अब की यह कई पल लों ठहरी और इसकी अधिकता बढ़ती ही गई। मैं बिलकुल अचेत हो कर खड़ा था कि इतने में कार बड़े बेग से हिला और साथ ही एक जलता हुआ न जाने कौन पदार्थ बड़े बेग से बेलून की ओर आया। जब मेरा भय विस्मय कुछ कम हुआ तो मैंने देखा कि यह चन्द्रलोक के ज्वालामुखी पर्वत से निकले हुए द्रव्य के टुकड़े हैं और पृथ्वी पर जो उल्का पत्थर गिरते हैं उन्हीं के समान ये भी देख पड़ते थे।

१६ अप्रैल—आज कमरे की दोनों खिड़कियों से ऊपर देखने से चन्द्रमा का मण्डल बेलून की परिधि के चारो ओर बढ़ा देख पड़ता था। यह देखकर मेरे चित्त में एक प्रकार की खलबली उत्पन्न हो गई थी। अब मुझे विश्वास हो गया था कि मैं अब अपने निरुपित स्थान पर शीघ्र पहुंच जाऊंगा। वायु जमाने में अब मुझे कष्ट उठाना पड़ता था। निद्रा विश्राम के लिए मुझे क्षण मात्र की छुट्टी नहीं मिलती थी। मैं अब सदा किसी न किसी प्रकार से पीड़ित रहता था। यह कदापि सम्भव नहीं कि मनुष्य इतना कष्ट चिरकाल लों सहन कर सके। आज रात्रि में फिर मेरे बेलून के निकट से होकर एक लुक का पत्थर चला गया और अब इनकी अधिकता से मुझे एक प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हुई।

१७ अप्रैल—आज का दिन मेरे भ्रमण में चिरस्मरणीय रहेगा। पाठकों को यह स्मरण होगा कि १३ वीं तारीख को मेरे बेलून से पृथ्वी की कोणिक चौड़ाई २५ अंश थी। १४ वीं को यह चौड़ाई बहुत घट गई। १५ वीं को इसमें भी कमी हो गई और १६ वीं की रात्रि को देखने से इसका कोण केवल ७ अंश १५ मिनट बच गया था। आज १७ वीं को प्रातः समय सोकर उठने पर मुझे यह जान पड़ा कि मेरे नीचे की पृथ्वी की सतह अकस्मात् बहुत बढ़ गई है, अर्थात् उसका कोणिक व्यास ७ अंश से आज ६९ अंश हो गया है। मैं तो यह देखकर भौचक्का हो गया और अपना भय तथा विस्मय कदापि वर्णन नहीं कर सकता। मेरे पैरों में कंपकंपी जान पड़ने लगी। मेरे दांत बैठ गये, तथा मेरे बाल मारे भय के खड़े हो गये। मेरा बेलून अब वास्तव में फटा चाहता है, मेरा बेलून अब फटा और मैं अब बड़े बेग से गिर रहा हूं, इतनी दूरी जो मैंने इतनी शीघ्रता से पार कर ली है, अब मैं उसी दूरी को अधिक से अधिक दस मिनट में तै कर लूंगा और पृथ्वी-तल तक पहुंचते पहुंचते मेरा सर्वनाश हो जायगा—यह विचार मेरे चित्त को चंचल किये देता था। पर तुरन्त ही मैंने अपने को बहुत संभाला, और अपनी इन मनः कल्पित बातों को असम्भव विचारने लगा। यह कदापि संभव नहीं कि मैं इतने शीघ्र नीचे पहुंच गया। यद्यपि मैं नीची सतह पर उतर रहा हूं, पर मेरा बेग उतना नहीं था जितना मैंने विचारा था। इस विचार ने मेरा चित्त अति शान्त कर दिया। वस्तुतः इस भय ने मेरे इन्द्रीय ज्ञानों का नाश कर दिया था। मैं कदापि उस समय अपने होश में न हूंगा। अब मैंने यह विचारा था कि यह सतह जो मेरे नीचे देख पड़ती है, पृथ्वी की है। पर वास्तव में पृथ्वी की सतह अब मेरे ऊपर शिरोविन्दु में हो गई थी और बेलून के आड़ में होने के कारण मुझे कुछ नहीं देख पड़ती थी और अब चन्द्रमा मेरे नीचे पैरों की ओर दिखाई दे रहा रहा था।

अपने चारो ओर की वस्तुओं में इस प्रकार एकाएक यह अद्भुत परिवर्तन देख मैं बड़े अचम्भे में पड़ गया था और यात्रा भर की बातों में इस बात का स्वयं मुझे कुछ अर्थ नहीं समझ पड़ता था। मैंने पूर्व ही सोच लिया था कि जब मेरा बेलून उस स्थान पर पहुंचेगा जहां, इस ग्रह की आकर्षण शक्ति से उपग्रह की आकर्षण शक्ति अधिकतर हो जायगी, तो यह परिवर्तन आवश्य-कीय हो जायगा। मैं एक घोर निद्रा में सोया सोया उस घटना को जो मैंने पूर्व ही विचारी थी, प्रत्यक्ष होते देखकर

चौंक पड़ा। यह चक्र अवश्य क्रम क्रम तथा बड़ी सुगमता से हुआ होगा और मुझे इसमें सन्देह है कि यदि मैं जागता भी होता तो क्या मुझे अपने बेलून का यह चक्र मालूम पड़ जाता। अब अपने भय इत्यादि से निर्भर हो मैंने चन्द्रमा के प्राकृतिक रंग रूप को देखना आरम्भ किया। मेरे नीचे यह एक समुद्र के चित्र के समान दिखाई दे रहा था और यद्यपि चन्द्रमा अभी मेरे बेलून से कुछ दूरी पर था, पर उसकी सतह का ऊभड़ खाभड़ स्पष्ट देख पड़ता था। चन्द्र-लोक-तल से सागर वा समुद्र की अनुपस्थिति मुझको उसके भूगोल सम्बन्धी अथवा बाहरी रूप में सबसे आश्चर्यजनक जान पड़ी। पर तिस पर भी उसमें मुझे ऐसी ऐसी समभूमि दिखाई देती थी जो कि जान पड़ता था कि जल के वेग से कहीं कहीं एकत्र होकर ऊंची हो गई है। उसके उस अर्द्ध भाग में, जो मेरे नेत्रों के सामने था, बहुत से ज्वालामुखी पर्वत दिखाई देते थे और यह जान पड़ता था कि इनके उभाड़ वा फुलाव बनाये हुए हैं। इनमें जो सबसे अधिक ऊंचा था, वह समकोण ऊंचाई में तीन सवा तीन मील से अधिक ऊंचा न होगा।

इनमें से बहुतेरों में से ज्वाला निकल रही थी और इनमें से जो लुक पत्थर अब निकलते थे वे मेरे बेलून से अधिक उंचाई पर पहुंचते थे।

१८ अप्रैल—आज मैंने चन्द्रमा की परिधि में अधिक वृद्धि पाई और बेलून के उतार के बेग में अत्यन्त वृद्धि देखकर मैं अति भयभीत हुआ। इस चन्द्रलोक यात्रा के सम्भव मानने के पूर्व ही मैंने चन्द्रमा के निकट वायु मण्डल का होना संभवित माना था। चन्द्रमा से अब मेरा बेलून प्रति क्षण निकट पहुंचता जाता था। और वायु जमाने में जो कष्ट मुझे भोगना पड़ता था उसमें अब तक कुछ कमी नहीं हुई थी, जिससे मुझे यह सन्देह उत्पन्न हो रहा था कि कदाचित् चन्द्रमा में वायु नहीं है।

१९ अप्रैल—आज प्रातःकाल मुझे बड़ा हर्ष हुआ, जब मैंने देखा कि चन्द्रमा अब अत्यन्त निकट आ गया है और फिर अपने वायु जमाने के यंत्र द्वारा मुझे यह जान पड़ा कि अब वायु के पतलेपन में बड़ा अन्तर पड़ गया है और दस बजे के लगभग मुझे पूरा विश्वास हो गया कि वहाँ वायु अवश्य है। फिर ग्यारह बजे वायु जमाने में मुझे कुछ भी परिश्रम न करना पड़ा और बारह बजे मैंने अपने कार की ओढ़नी को उतार कर रख दिया। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि ज्यों ज्यों मैं चन्द्रमा के निकट पहुंचता जाऊंगा, वायु अधिक मिलता जायगा। यद्यपि मेरा यह विचारना यथार्थ निकला कि चन्द्रमा के निकट उसके पिण्ड के यथा-योग्य वायु अवश्य पाया जायगा, पर तिस पर भी उसकी सघनता के विषय में मने धोखा खाया, क्योंकि उसके तल पर भी इतना वायु नहीं पाया जाता था जो मेरे कार को उसके बोझ सहित ऊपर सम्हाले रहता। पर बड़ी उतावली के साथ मेरे मुंह के बल गिरने से इसका खंडन हो गया। जो कुछ हो मैं अब अत्यन्त बेग से चन्द्रतल पर गिर रहा था। मैंने बोझ, जल के घड़े, वायु जमाने के यंत्र इत्यादि के फेंकने में क्षणमात्र न गंवाया, यहां तक कि अन्त में अपने कार में की यावत् सामग्री नीचे फेंक दी; पर उसके वेग में तनिक भी कमी न हुई। अब मैं चन्द्रतल से कोई आध मील की दूरी पर था। अब अन्त को अपना कोट टोपी आदि फेंक देने पर मैंने अपने कार को बेलून से काट दिया और मैं बेलून के जाल को दोनों हाथों से कस कर पकड़े रहा।

अब मैं अपने नीचे छोटे छोटे घर तथा बस्ती देख रहा था और मुझे यह जान पड़ता था कि मैं एक विचित्र नगर में उतर रहा हूं। ठीक मेरे नीचे छोटे छोटे मनुष्यों का एक समूह एकत्र था, जो कि न तो कुछ शब्द उच्चारण करते और न मेरी सहायता करने पर कुछ उत्साह दिखाते थे, पर मूढ़ों के समान दांत निपोरे मुंह बाये खड़े थे और मुझे तथा मेरे बेलून को ध्यान पूर्वक देख रहे थे। मैंने ग्लानि से उनकी ओर से नेत्र फेर लिया और ऊपर की ओर अपनी पृथ्वी को देखने लगा, जो कि इस समय एक बड़े तांबे के तथा धुन्धली ढाल के समान कोई दो अंश व्यास में दिखाई दे रही थी और जो कि ऊपर आकाश में मानो अचल स्थापित थी और जिसका एक कोर सोने के समान चमक रहा था। जल वा स्थल का कोई चिन्ह विशेष नहीं बूझ पड़ता था। इस प्रकार से, पाठकगण! मैं अनेक प्रकार के दुःख आपत्तियों से बचकर रत्नधाम से बिदा हो, उन्नीसवें दिन अपने स्थान पर पहुंचा। मुझे अभी बहुत कुछ कहना है। मुझे वहां के आबहवा, शीत और गर्म ऋतुओं के विचित्र विभेद, एक पक्ष लों सूर्य की जलती हुई धूप, तथा दूसरे में अत्यन्त सरदी, यह सब हाल कहना बाकी है। वहां के मनुष्य, उनके आचार व्यवहार, तथा

राजकीय विषय पर कुछ कहूंगा। उनकी विचित्र शारीरिक प्रकृति, उनका असौन्दर्य, तथा उनका श्रवणहीन होना, उनका वाक्यहीन होने पर एक विचित्र ढंग पर बातचीत करना, आप महाशयों को अवश्य सुनाऊंगा। इसके अतिरिक्त और बहुत सी विचित्रता सुनाने को हूं जो कि मनुष्य कदापि अपने टेलिस्कोप द्वारा नहीं देख सकता। पर इसके बदले में आप महाशयों से अपने अपराध की क्षमा प्रदान चाहता हूं। मैं अब अपनी जन्मभूमि, तथा अपने मित्र बन्धुओं के देखने की बड़ी आकांक्षा रखता हूँ। मैं आत्म विद्या, तथा प्राकृतिक विद्या सम्बन्धी जो हाल लिखने को हूं, उसके प्रतिकार में मैं यह आशा रखता हूँ कि आप मुझे उन तीन पापात्माओं के प्राण-बध के लिए क्षमा करेंगे। इस पत्र का ले जाने वाला चन्द्रमा के एक निवासियों में से है, जिसने बड़े कहने पर पृथ्वी जाना स्वीकार किया है। वह इसके उत्तर के लिए ठहरेगा और उत्तर लेकर मेरे पास शीघ्र लौट आवेगा।

आपका दास
हंसपाल

१९००

❀ ❀ ❀

मुक्ति का उपाय

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(अनु०---लाला पार्वतीनन्दन)

(१)

फकीरचन्द की प्रकृति बाल्यावस्था से ही गम्भीर थी। बूढ़े मनुष्यों की सङ्गति में वह कभी बेढब नहीं जँचता था। हँसी दिल्लगी उसे बिल्कुल नहीं भाती थी। एक तो वह गम्भीर था ही, तिस पर वर्ष के अधिकांश समय में अपने मुखमण्डल के चारों ओर काले ऊन का गलाबन्द लपेटे रहता था। और थोड़ी ही वयस में उसके ठिड्डू और गाल घने बालों से आच्छादित हो जाने के कारण सारे मुखड़े पर हास्य विकास के लिए तिल मात्र भी ठौर नहीं बचा था। इन सब कारणों से लोग उसे एक बड़ी ऊंची श्रेणी का मनुष्य समझते थे। उसकी स्त्री कल्याणी का वयस नवीन था और उसका मन भी पार्थिव विषयों में बहुत लगता था। वह नाना भांति के नए नए नावेल पढ़ा करती और पति को ठीक देवता की भांति पूज कर भी तृप्त नहीं होती थी। कुछ कुछ हास्य-रङ्ग में भी उसकी रुचि रहती थी और खिलता हुआ पुष्प जैसे वायु के झकोरे और प्रातःकाल के लिए व्याकुल होता है, उसी भांति वह भी इस नए यौवन के समय पति से आदर और हास्यामोद की यथापरिमाण प्रत्याशा करती थी; परन्तु पति देवता सावकाश पाते ही उसे भागवत पढ़ाते, सन्ध्या के समय उसे भगवद्गीता सुनाते और कभी कभी उसकी आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा से शारीरिक शासन करने में भी नहीं चूकते थे। जिस दिन कल्याणी के सिरहने के तले गदाधर सिंह की कादम्बरी निकल पड़ी, उस दिन उस लघु प्रकृति युवती को सारी रात आंसू टपकवा कर फकीरचन्द ने दम लिया था। एक तो नावेल पाठ, तिस पर पति से प्रवंचना! अस्तु, अविराम आदेश अनुदेश उपदेश धर्म्म नीति और दण्डनीति के द्वारा--निदान कल्याणी के मुख की मुसक्यान, मन का सुख और यौवन की उमङ्ग पूरी पूरी निचोड़ लेने में स्वामी महाराज कृतकार्य हो गए।

परन्तु अनासक्त मनुष्य के लिए संसार में बहुत विघ्न हैं। होते होते फकीरचन्द के एक पुत्र और एक कन्या ने जन्म लेकर संसार का बन्धन बढ़ा दिया। और पिता की ताड़ना से इतने बड़े गम्भीर प्रकृतिवान् पुरुष को भी दफ्तर दफ्तर नौकरी की उम्मीदवारी में निकलना पड़ा। परन्तु जीविका की सम्भावना कहीं भी न दीख पड़ी।

तब तो उसके मन में आया कि बुद्ध देव की नाईं संसार ही को त्याग दूं। यह सोच एक दिन गहरी रात को

वह घर छोड़ बाहर निकल पड़ा। यहां पर एक और वृत्तान्त कहना आवश्यक है।

(२)

नयागांव-निवासी मनबोध राम के एक ही पुत्र था। नाम उसका माखनलाल। विवाह हो जाने के पश्चात् सन्तान सन्तति न होने के कारण पिता के अनुरोध और नवीनत्व की लालच से माखन ने दूसरा विवाह कर डाला। इस बिवाह के अनन्तर यथाक्रम उसकी दोनों स्त्रियों के गर्भ से सात कन्या और एक पुत्र आविर्भूत हुए।

माखनलाल बांका और चपल स्वभाव का था, किसी प्रकार के गुरुतर कार्य में अपने को फंसाना उसे तनिक नहीं भाता था। एक तो बाल बच्चों का बोझ, तिस पर जब दोनों कर्णधार* दोनों कानों में झटका देने लगे, तो जब और सहा न गया, तो एक दिन अँधेरी रात को उसने भी डुबकी मारी।

बहुत दिन हो गए, उसका कुछ पता नहीं लगता। कभी कभी सुनने में आता है कि उसने पंजाब में जाकर एक और ब्याह कर लिया है, और लोग कहते हैं कि अभागे को अब कथञ्चित शान्ति-सुख मिला है। केवल कभी कभी स्वदेश में आने के लिए उसका मन उतावला हो जाता है, पर फिर फन्दे में पड़ जाने के भय से यहां नहीं आता।

(३)

कुछ दिन रमते रमते उदासीन फकीरचन्द नयागांव में आ पहुंचा। मार्ग के पास ही एक बरगद के तले बैठ कर लम्बी सांस भर के कहने लगा--"आहा वैराग्यमेवाभयम्! दारा पुत्रं क्षेत्रं वित्तं कोई किसी का नहीं। का ते कान्ता कस्ते पुत्रः"। यों कह कह एक राग उसने छेड़ दिया---

मनुआ मेरी बात को सुन ले तू है बड़ा अयाना रे!
मुक्ति पन्थ बतलावे साधू उसको क्यों नहि माना रे?
जगत के सीपी तोड़ ले मनुआ मुक्ति मोति मनमाना रे!
मनुआ तू दिवाना भारी फिरता कहाँ भुलाना रे?

अकस्मात् गीत रुक गई। "कौन है वहा? ऐं! पिता जी! मालूम होता है कि उन्हें मेरा पता लग गया! अरे बड़े आपद में आ फंसे! फिर जान पड़ता है कि संसार के अन्धकूप में खींच ले जायंगे! भागना पड़ा।"

(४)

झटपट फकीरचन्द पास के एक गृह में घुस पड़ा। बूढ़ा गृहस्वामी चुपचाप बैठा हुआ तमाकू पी रहा था। उसे घर में घुसते देखकर पूछा "तुम कौन हो जी?"

फकीर--बाबा, मैं सन्यासी हूं।

वृद्ध--सन्यासी! देखें, देखें, उजाले में तो आओ। यों कह कर वृद्ध उसे उजाले में घसीट लाया और बड़े यत्न से फकीरचन्द के मुख पर झुक कर, बूढ़े मनुष्य जैसे बड़ी कठिनाई से पोथी पढ़ते हैं, उसी भांति उसके मुख को निरीक्षण कर धीरे धीरे कुछ बड़बड़ाने लगा--

"अरे यह तो हमारा माखनलाल दीखै है! वही आंख, वही नाक, खाली माथा कुछ बदल सा गया है, और चांद से मुखड़े को दाढ़ी मोछ ने बिल्कुल घेर लिया है!" यों कह कर उस वृद्ध ने प्यार से फकीरचन्द के जंगलमय मुख पर दो एक बार हाथ फेरा और फिर कहा "माखन, बेटा!"

इसके कहने का कोई प्रयोजन नहीं है कि वृद्ध मनबोध राम था।

फकीर--(विस्मित होकर) माखन! मेरा नाम तो माखन नहीं है! पहिले मेरा नाम चाहे जो कुछ रहा हो, अब मेरा नाम चिदानन्द स्वामी है। और चाहो तो मुझे परमानन्द भी कह सकते हो।

मनबोध--बेटा, तुम अब अपना नाम चाहे ऊधो रक्खो चाहे माधो, मेरे लिये तुम माखन ही हो, यह भला मैं कैसे भूल सकता हूं? बेटा रे, तूने कौन से दुःख के मारे गृहस्थी छोड़ दी? तुझे किस वस्तु का अभाव है? दो दो स्त्रियां घर में हैं, बड़ी से प्रेम न हो छोटी है। लड़के बालों का भी कुछ क्लेश नहीं। राम की दया से तेरे सात बेटियां हैं एक बेटा है। तुझे किस बात की कमी है! और मैं बूढ़ा बाप और कै दिन जीउंगा, तेरा राजपाट सब तुझ ही को फलेगा।

फकीरचन्द चौंक कर बोल उठा "अरे बाप रे! सुनते भी डर लगता है!"

इतनी देर में उसे वास्तविक बात ज्ञात हुई। सोचन

*दूसरा अर्थ नौका चलाने वाले केवट।

लगा "हानि क्या है, दो दिन वृद्ध का पुत्र ही बनकर छिप रहूं। फिर पिता जब मेरा खोज पता न पाकर लौट जायंगे तो मैं भी यहां से चल खड़ा होऊंगा।"

फकीर को निरुत्तर देख वृद्ध के मन में और कुछ संशय नहीं रहा। नौकर को पुकार कर बोला, अरे ओ किसना, सब लोगों से तू जाकर कह आ मेरे माखन लौट आए हैं।

(५)

देखते देखते लोगों की भीड़ जम गई। आसपास के प्रायः अधिकांश लोगों ने कहा हां वही है। किसी किसी ने सन्देह भी जताया। परन्तु विश्वास करने के लिए सब इतने व्यग्र हो रहे थे कि सन्दिग्ध मनुष्यों पर वे बिगड़ बैठे। मानो ये लोग जान बूझ कर रसभङ्ग करने आए थे, मानो ये न भूत को मानते थे न ओझा ही को। आश्चर्य कथा को सुन कर जब सब लोग भौचक्के हो गए, उस समय भला ये मनुष्य सन्देह कैसे करने बैठे! इन्हें तो एक प्रकार का नास्तिक ही कहना चाहिए था। पर, चाहे भूत पर विश्वास न भी करते, किन्तु बूढ़े बाप के खोए हुए पुत्र को सामने देखते हुए विश्वास न करना तो बड़ी हृदयहीनता का कार्य था। अस्तु ये अविश्वासी सब लोगों से ताड़ना खाकर दुम दबाकर वहां से चल खड़े हुए।

फकीरचन्द के अति भीषण अटल गाम्भीर्य्य पर तिल भर भी ध्यान न देकर टोले के लोग उसे घेर कर कहने लगे—"अरे, अरे, हमारे माखनलाल आज ऋषीश्वर हुए हैं, महात्मा बन बैठे हैं! जनम भर तो बांके छैले बने फिरा किए, आज अकस्मात् महामुनि यमदग्नि बन बैठे हैं।"

उन्नतचेता फकीर को यह बात बहुत बुरी लगी। परन्तु निरुपाय होने के कारण सब सह लेना पड़ा। एक मनुष्य देह से चिपट कर बोल उठा, "अरे माखन, तू तो जामुन सा काले रंग का था, ऐसा गोरा कैसे बन गया?"

फकीरचन्द ने उत्तर दिया "योगाभ्यास के कारण।" सब बोल उठे "ओः हो! योग का कैसा आश्चर्यमय प्रभाव है!!"

एक मनुष्य बोल उठा आश्चर्य का इसमें क्या कारण है? शास्त्र में लिखा है कि हनुमान जी की पूंछ पकड़ कर जब भीमसेन उठाने लगे तो वह उससे नहीं उठी। यह कैसे हुआ? योगबल ही से न!

यह बात सब को मान लेनी पड़ी।

इतने में मनबोधराम ने आकर फकीरचन्द से कहा "बेटा, एक बार भीतर चलो।"

गृह के भीतर स्त्रियों के निवासभवन में जाने की सम्भावना पहिले फकीरचन्द की बुद्धि में नहीं आई थी। अब वृद्ध की बात सुनते ही सहसा वज्रपात के समान उसके मस्तिष्क में घुस गई। बहुत देर तक चुप रह कर और महल्ले वालों के अनेक अन्याय परिहास को सहकर अन्त में वह बोला "बाबा! मैं सन्यासी हो गया हूँ। मैं अन्तःपुर में नहीं जा सकता।"

इस पर मनबोधराम ने सब लोगों से कहा, "महाशयो! जब ऐसी बात है तो आप लोग कृपा कर एक बार बाहर चले जाइए। बहुओं को मैं यहीं लिए आता हूं। वे बहुत व्याकुल हो रही हैं।"

सब लोग उठ गए। फकीर ने सोचा मैं भी इसी अवसर में चल खड़ा होऊं। परन्तु तुरन्त यह सोचकर चुपचाप खड़ा रहा कि बाहर जाते ही गांव के सब लोग मेरे पीछे कुत्तों की भांति पड़ जांयगे।

माखनलाल की दोनों स्त्रियां ज्योंही उसके सामने आईं त्योंही फकीरचन्द ने साष्टांग दण्डवत करके कहा माता, मैं आप लोगों का पुत्र हूं।

बस, तुरन्त उसके नाक के सामने, कङ्कन पहिरा हुआ एक हाथ खड्ग के समान आ लपका और टूटी हुई कांसे की थाली जैसे बजती है उसी प्रकार के स्वर से एक स्त्री बोल उठी "क्यों रे! तूने किस को माता कहा?"

उसी क्षण एक दूसरा कण्ठ स्वर दो सुर और ऊपर को चढ़कर मुहल्ले भर को कंपा कर झङ्कार उठा "तेरी आंखें फूट गई हैं? तू मरता क्यों नहीं?"

फकीरचन्द को अपनी स्त्री के पास ऐसी ठेठ हिन्दी सुनने का अभ्यास नहीं था। इससे बड़ा कातर हो कर वह हाथ जोड़ कर बोला "आप लोग भूल रही हैं। मैं उजाले में खड़ा होता हूं। मुझे अच्छी तरह देख लीजिए।"

प्रथमा और द्वितीया दोनों साथ साथ बोल उठीं "हां हां, बहुत देखा है। देखते देखते आंखें घिस गई हैं। तुम छोटे से बच्चे नहीं हो। आज नए नहीं जनमे हो। तुम्हारे दूध के दांत बहुत दिन हुए टूट गए। तुम्हारे उमर का क्या कुछ ठिकाना है? यमराज तुम्हें भूल गए हैं, हम नहीं भूली हैं।"

इस भांति एकतरफा दाम्पत्य आलाप कब तक चलता, यह विचार करना कठिन है; क्योंकि फकीरचन्द सम्पूर्ण वाक्शक्ति रहित होकर सिर नीचा किए खड़ा था। ऐसे समय बहुत गुल गपाड़ा सुनकर और गृह के बाहर भीड़ बहुत जमते देखकर मनबोधराम वहां पर आया। कहने लगा "आज तक मेरा घर निस्तब्ध था, कोई चूं तक शब्द नहीं करता था। आज जान पड़ता है कि मेरा माखन घर आ गया है।"

फकीरचन्द ने हाथ जोड़कर कहा "महाराज! अपनी पतोहुओं के हाथ से मेरे प्राण बचाइए।"

मनबोधराम—"बेटा, बहुत दिनों में आज घर आए हो इसी से पहिले पहिल कुछ अनकुस मालूम पड़ता होगा। तो बेटिओ, अब तुम लोग जाओ। माखन मेरा तो अब यहीं रहेगा, उसे अब किसी भांति नहीं जाने देंगे।"

दोनों स्त्रियां जब बिदा हो गईं तो फकीरचन्द ने मनबोधराम से कहा "महाशय, आपका पुत्र जिस कारण से गृहस्थी छोड़ गया है मुझे उसका ज्ञान अच्छी रीति से हो गया। महाशय, मैं आप को प्रणाम करता हूं। मैं अब चला।" उसे जाते देख बुड्ढा ऐसे उच्च स्वर से रोने लगा, कि मुहल्ले के लोगों ने समझा कि माखन अपने पिता को मार रहा है। हैं! हैं! करते हुए सब के सब फिर आंगन में घुस पड़े और फकीर से कहने लगे कि अब तुम्हारे पाखण्ड से काम न चलेगा। भले आदमियों की नाईं चुपचाप रहो तो अच्छा, नहीं तो तुम्हारी भी पूरी पूरी खबर ली जायगी। एक मनुष्य ने कहा "आप परमहंस नहीं हैं, परम बगुला हैं!"

जब फकीरचन्द पिता के यहां गम्भीर मूर्त्ति को गलमुच्छे और गलाबन्द से सुशोभित रखता था उस समय उसे कभी ऐसी ऐसी कुत्सित कथाएं नहीं सुननी पड़ी थीं। परन्तु वह फिर भाग न जाय इसलिए सब लोग बहुत सावधान हो गए। स्वयं गांव के जमींदार भी मनबोधराम का पक्ष लेने लगे।

(६)

फकीरचन्द ने देखा कि पहरा इतना कड़ा बैठा है कि मृत्यु के पहिले ये लोग उसे कभी घर से बाहर नहीं होने देंगे। इसलिए चुपचाप बैठा बैठा वह गाने लगा—

मुक्ति पन्थ बतलावे साधू उसको क्यों नहिं माना रे!

यहां इसके कहने का कुछ प्रयोजन नहीं है कि भजन का आध्यात्मिक अर्थ इस समय बहुत क्षीण हो गया था।

अस्तु, यों भी किसी भांति समय कट ही जाता। परन्तु माखनलाल के लौटने का समाचार पाकर दोनों स्त्रियों के नाते से साले और सालिओं की एक पलटन की पलटन आ पहुंची।

वे लोग आते ही पहिले तो फकीरचन्द की मोछ दाढ़ी पकड़ पकड़ कर खींचने लगे। कहने लगे यह कुछ सचमुच की दाढ़ी थोड़े ही है। इसने ढोंग करके मुंह पर बहुत से बाल चिपका लिए हैं। इस भांति नाक के नीचे के बाल पकड़ पकड़ कर खीचने से फकीरचन्द के समान बड़े बड़े महात्मा पुरुषों के लिए भी अपना माहात्म्य रक्षा करना कठिन हो जाता है। इसके सिवाय कान पर भी उपद्रव हो रहा था। सचमुच कनैठी देने के उपरान्त लोग विशेष कर ऐसी ऐसी भाषा सुना रहे थे कि जिन्हें सुनने से न ऐंठने पर भी कान आप ही लाल हो जाते हैं। कोई कोई साधू को ऐसे ऐसे भजन गाने की आज्ञा देने लगे कि आधुनिक बड़े बड़े पण्डित लोग भी उनकी आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए हार जाते हैं। सोते, जागते, भोजन करते, सब समय इन सम्बन्धियों ने फकीरचन्द का नाक में दम कर दिया। वह बिचारा क्रोध से भर कर कभी दुखी होने और कभी चिल्लाने और धमकाने लगा, परन्तु उपद्रवियों के मन में भय का कुछ भी संचार न हुआ। वरन् सर्वसाधारण के पास वह अधिकतर हास्यास्पद ही हुआ। इन सबके ऊपर किवाड़ों की ओट से कभी कभी एक मीठे स्वर की हंसी सुन पड़ती थी। वह स्वर परिचित सा जान पड़ा और उसे सुन सुनकर फकीरचन्द दुगना अधीर होने लगा।

परिचित स्वर पाठक का अपरिचित नहीं है। मनबोध

राम किसी दूर के नाते से कल्याणी के मामा थे। मातृ पितृ हीना कल्याणी ससुराल में जब बहुत क्लेश उठाती तो किसी न किसी बहाने वह अपने कुटुम्बियों के घर चली आती थी। आज बहुत दिन पीछे अपने मामा के घर आकर वह नेपथ्य से परम कौतुकमय अभिनय को देख रही थी। उस समय उसकी स्वाभाविक रङ्गप्रियता के साथ ही प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति भी उभड़ आई थी कि नहीं, इस बात को चरित्रतत्वज्ञ पण्डित लोग समझ लें। हम इसके विचार करने में असमर्थ हैं।

परिहास सम्पर्की लोग तो कभी कभी चुप भी हो जाते थे, परन्तु स्नेह सम्पर्की जनों के हाथ से छुटकारा मिलना कठिन था। सात कन्या और एक पुत्र एक क्षण भर भी उसे नहीं छोड़ते थे। पिता के स्नेह पर अधिकार जमाने के लिए उनकी माताओं ने उन्हें उसके पास से पल भर भी नहीं हटने दिया था। तिस पर दोनों माताओं में टक्कर चल रही थी, दोनों चाहती थीं कि मेरी ही सन्तति को पितृ स्नेह का अधिकतर भाग मिले। दोनों दल मिलकर उसके गोद में बैठकर, उसका गला पकड़ कर, मुख चूम कर, तथा अन्य नाना उपायों से प्रबल स्नेह-प्रकाश के कार्य्य में एक दूसरे को जीतने की चेष्टा करने लगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि फकीरचन्द का स्वभाव यदि अत्यन्त निर्लिप्त न होता तो अपनी सन्तान को भी बिना दुख द्वन्द के छोड़कर वह कभी नहीं जा सकता था। बालक-गण भक्ति को नहीं पहिचानते हैं और न उन्होंने साधुत्व की मर्यादा ही सीखी है, इसलिए फकीरचन्द शिशु जाति के प्रति तिलमात्र भी अनुरक्त नहीं होता था। वह उन्हें कीट पतङ्गों की नाईं अपनी देह से दूर ही रखना चाहता था। इस समय वह रात दिन शिशु रूपी टिड्डियों के दल से आच्छादित होकर बर्जाइस* अक्षर के छोटे बड़े नोटों से साद्योपान्त समाकीर्ण ऐतिहासिक प्रबन्धों की नाईं शोभायमान हुआ। अनेक समय शुद्ध शुचि फकीरचन्द की आँखों से आँसू निकल पड़ते, पर वे कदापि आनन्दाश्रु नहीं थे।

पराए बालक बालिका जब नाना सुरों से 'पिता' कह कह कर उसे आदर सहित पुकारने लगते, उस समय उसके जी में आता था कि उन्हें ऐसा मारे कि वे मर ही जांय। परन्तु डर के मारे कुछ नहीं कर सका, आँख भौं चढ़ा कर मुंह टेढ़ा करके चुपचाप बैठा ही रहा।

(७)

अन्त में वह बहुत गुल गपाड़ा मचाने लगा और बोला कि "मैं जाता हूं, देखूं कौन मुझे रोकता है।" तब सब गांव वाले एक मुखतार को बुला लाए। मुखतार ने आकर कहा "आप जानते हैं कि आपकी दो स्त्रियां हैं।"

फ—जी, यह मैंने आज पहिले पहिल सुना।

मु—और आपकी सात कन्याएं और एक पुत्र हैं। दो कन्याएं उन में विवाह के योग्य हैं।

फ—जी, मैं देखता हूं कि आप मुझ से भी बहुत अधिक जानकारी रखते हैं।

मु—इस भारी परिवार के पालन पोषण का भार यदि आप अपने ऊपर न लें तो आप की दोनों अनाथिनी स्त्रियां अदालत का आश्रय लेवेंगी। यह मैं आपको पहिले से जताए देता हूं।

अदालत के नाम से फकीरचन्द बहुत डरता था। वह जानता था कि वकील लोग जिरह करने के समय महा-पुरुषों की मान मर्य्यादा वा उनके गाम्भीर्य्य का कुछ भी आदर नहीं करते। प्रकाश में वे उनका अपमान करते हैं और सम्वादपत्रों में भी छपवा देते हैं। फकीरचन्द नेत्रों में आंसू भरकर मुखतार महाशय से अपना विस्तारित परिचय कहने लगे। मुखतार सुनकर उसकी चतुराई, उप-स्थित बुद्धि और मिथ्या कहानी रचने की असाधारण क्षमता की बारम्बार प्रशंसा करने लगा, जिसे सुन फकीर के जी में यों आने लगा कि आप अपने हाथों अपने प्रान ले डालूं तभी अच्छा है।

मनबोधराम फकीरचन्द को फिर भागने में तत्पर देखकर शोक से अधीर हो रोने लगा। इस कारण टोले वाले सब लोग चारों ओर से उसे मनमानी गालियां देने लगे। और मुखतार ने उसे ऐसा डराया कि उसके मुख से फिर कोई शब्द तक नहीं निकला।

इन सब के ऊपर आठ आठ बालक बालिकाओं के गाढ़े स्नेह ने उसे चारों ओर से इस प्रकार घेर लिया था कि बिचारे का दम घुटने लगा। तब उसकी विपत्ति को देखकर ओट में बैठी हुई कल्याणी यह ठीक न विचार सकी कि वह हँसे अथवा रोवे।

*एक प्रकार के छोटे टैप का नाम है, जो बहुधा फुट नोट आदि छापने में लगता है।

कई दिन जब इस भांति बीत गए, और जब प्राण बचने का कोई और उपाय न रहा तो फकीरचन्द ने एक पत्र द्वारा अपने पिता को अपना यथार्थ समाचार लिख भेजा। उसके पिता पत्र पढ़ते ही तुरन्त चले आए। परन्तु टोले वाले और जिमींदार, मुखतार, आदि कोई उस पर से अपना अधिकार नहीं छोड़ना चाहते थे। उन लोगों ने सब भांति से प्रमाणित कर दिखाया कि यह सन्यासी माखनलाल को छोड़ दूसरा और कोई नहीं है। यहां तक कि जिस दासी ने माखनलाल को शिशु काल में गोद में लेकर खिलाया और पालन किया था, उस बुढ़िया तक को वे पकड़ लाए। उसने अपने कांपते हुए हाथों से फकीर चन्द की ठुड्डी पकड़ कर बड़ी बेर तक उसके मुख को निरीक्षण कर उसकी दाढ़ी पर आंसू की धारा बहा दी।

जब देखा कि फकीर अब भी राह पर नहीं आया, तो घूंघट से मुख छिपा कर माखन की दोनों स्त्रियां वहां आ पहुंचीं। सब लोग चटपट बाहर उठ गए। केवल दोनों पिता, फकीर और शिशुगण वहां पर रहे।

स्त्रियां हाथ हिलाहिला कर दोनों ओर से पूछने लगीं "किस भाड़ में, यमराज की कौन सी गुफा में जाने को जी चला है?"

फकीर इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर न सोच सका, इस कारण निरुत्तर रहा। परन्तु उसके भावों को देखकर ऐसा कुछ नहीं जान पड़ा कि वह किसी विशेष यम गुफा का पक्षपाती था। इस समय कोई भी गुफा उसे मिल जाती तो उसके प्राण बच जाते। तब एक और स्त्री की मूर्त्ति वहां पर आई और उसने फकीर के चरणों में प्रणाम किया। फकीर पहिले तो अचरज से अवाक् हो गया, परन्तु तुरन्त आनन्द से उछल कर बोल उठा "अरे, यह कल्याणी है।"

इससे पहिले कभी अपनी अथवा पराई स्त्री को देख उसके मन में इतना प्रेम प्रकाशित नहीं हुआ था। उसने समझा कि मूर्तिमती मुक्ति आकर आप साक्षात् खड़ी हो गई है।

ठीक इसी समय एक और मनुष्य दुशाला ओढ़े हुए वहां पर सिर बढ़ाकर ताक रहा था। उसका नाम था माखनलाल। एक अपरिचित निरीह मनुष्य को अपने पद पर अभिषिक्त देखकर उसे एक अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा था। परन्तु जब कल्याणी को सामने आते देखकर उसे जान पड़ा कि यह मनुष्य उसी का बहनोई है, तो दया-परतन्त्र होकर सबके सामने आकर वह बोला "नहीं, अपने कुटुम्ब को इस भांति विपद में डालना महापातक का कार्य है। दोनों स्त्रियों की ओर दिखाकर उसने कहा "यह मेरी गगरी है और यह मेरी रस्सी"† माखनलाल के इस असाधारण महत्त्व और वीरत्व से गांव भर के सब लोग आश्चर्यित हो गए।‡

---

†यह वङ्गभाषा का एक चलित प्रवचन है। अर्थ—इस रस्सी से इस गगरी को गले में बांधकर गङ्गा जी में डूब मरूंगा। इनसे मेरा पिण्ड नहीं छूटने का। लोग प्रायः ग्लानि दिलाते समय कहते हैं कि गले में रस्सी और घड़ा बांध कर डूब मरो।' ॥

‡वङ्ग भाषा के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत बाबू रवीन्द्र नाथ ठाकुर की लिखी कहानी का अनुवाद उनकी सम्मति से प्रकाशित हुआ, इस कारण उनको धन्यवाद है।

❀ ❀ ❀

प्लेग की चुड़ैल

श्री० भगवानदास, बी० ए०

गत वर्ष जब प्रयाग में प्लेग घुसा और प्रतिदिन सैकड़ों गरीब और अनेक महाजन जमींदार वकील मुख्तार के घरों के प्राणी मरने लगे तो लोग घर छोड़-छोड़कर भागने लगे यहां तक कि कई नामी डाक्टर भी दूसरे शहरों को चले गए। एक मुहल्ले में ठाकुर बिभवसिंह नामी एक बड़े जमींदार रहते थे। उन्होंने भी अपने इलाके पर जो प्रयाग से ५ मील की दूरी पर था, चले जाने की इच्छा की। सिवा उनकी स्त्री और एक पांच वर्ष के बालक के और कोई सम्बन्धी उनके घर में नहीं था। रविवार को प्रातःकाल ही सब लोग इलाके पर चलने की तैयारी करने लगे। जल्दी में उनकी स्त्री ने ठंडे पानी से नहा लिया। बस नहाना था कि ज्वर चढ़ आया, हकीम साहब बुलाए गये और दवा दी गई, पर उससे कुछ लाभ न हुआ। सायंकाल को गले में एक गिलटी भी निकल आई। तब तो ठाकुर साहब और उनके नौकरों को अत्यन्त व्याकुलता हुई। डाक्टर साहब बुलाए गए, उन्होंने देखते ही कहा कि प्लेग की बीमारी है, आप लोगों को चाहिए कि यह घर छोड़ दें। यह कहकर वह चले गए। अब ठाकुर साहब बड़े असमंजस में पड़े। न तो उनसे वहां रहते ही बनता था, न छोड़ के जाते ही बनता था। वह मन में सोचने लगे यदि यहां मेरे ठहरने से बहूजी को कुछ लाभ हो तो मैं अपनी जान भी खतरे में डालूं। परन्तु इस बीमारी में दवा तो कुछ काम ही नहीं करती, फिर मैं यहां ठहरकर अपना प्राण क्यों खोऊं। यह सोच जब वह चलने के लिए खड़े होते थे तब वह बालक जिसका नाम नवलसिंह था, अपनी माता के मुंह की ओर देखकर रोने लगता था और वहां से जाने से इन्कार करता था। ठाकुर साहब भी प्रेम के कारण मूक अवस्था को प्राप्त हो जाते थे और विवश हो बैठ रहते थे। ठाकुर साहब तो बड़े सहृदय और सज्जन पुरुष थे, फिर इस समय उन्होंने ऐसी निठुरता क्यों दिखलाई, इसका कोई कारण अवश्य था, परन्तु उन्होंने उस समय उसे किसी को नहीं बतलाया। हां, वह बार-बार यही कहते थे कि स्त्री का प्राण तो जा ही रहा है, इसके साथ मेरा भी प्राण जावै तो कुछ हानि नहीं, पर मैं यह चाहता हूं कि मेरा पुत्र तो बचा रहे, मेरा कुल तो न लुप्त हो जावे। पर वह बिचारा बालक इन बातों को क्या समझता था। वह तो मातृ भक्ति के बन्धन में ऐसा बंधा था कि रात भर अपनी माता के पास बैठा रोता रहा। जब प्रातःकाल हुआ और ठकुराइनजी को कुछ चेत हुआ तो उन्होंने आंखों में आंसू भर के कहा बेटा नवलसिंह! तुम शोक मत करो, तुम किसी दूसरे मकान में चले जाओ, मैं अच्छी होकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊंगी। पर वह लड़का न तो समझाने ही से मानता था न स्वयं ऐसे स्थान पर ठहरने के परिणाम को जानता था। बहूजी तो यह कहकर फिर अचेत हो गईं, पर बालक वहीं बैठा सिसक-सिसक रोता रहा। थोड़ी देर बाद फिर डाक्टर, वैद्य, हकीम आए, पर किसी की दवा ने काम न किया। होते-होते इसी तरह दोपहर हो गई। तीसरे पहर को बहूजी का शरीर बिलकुल शिथिल हो गया और डाक्टर ने मुख की चेष्टा दूर ही से देखकर कहा 'बस अब इनका देहान्त हो गया, उठाने की फिक्र करो।' यह सुन सब नौकरनियां और नौकर रोने लगे और पड़ोस के लोग एकत्रित हो गए, सबके मुख से यही बात सुन पड़ती थी 'अरे क्या निर्दई काल ने इस अबला का प्राण ले ही डाला, क्या उसकी सुन्दरता, सहृदयता और अपूर्व पातिव्रत धर्म का कुछ भी असर उस पर नहीं हुआ, क्या इस क्रूर काल को किसी के भी सद्गुणों पर विचार नहीं होता!!' एक पड़ोसी जो कवि था, यह सवैया कह कर अपने शोक को प्रकाश करने लगा—

"सूर को चूर करै छिन में
अरु कादर को दर धूर मिलावै।
कोविदहूँ को बिदारत है,
अरु मूरख को रख गाल चबावै॥
रूपवती लखि मोहत नाहिं,
कुरूप को काटि तूं दूर बहावै।

हूँ कोउ औगुण वा गुण या जग
निर्दयी काल जो तो मन भावं ।।"

स्त्रियां कहने लगीं "हा हा, देखो वह बालक कैसा फूट-फूटकर रो रहा है। क्या इसकी ऐसी दीन दशा पर भी उस निठुर काल को दया नहीं आई? इस अवस्था में बिचारा कैसे अपने माता के वियोग की व्यथा सह सकेगा! हा इस अभागे पर बचपन ही में ऐसी विपति पड़ी!" ठाकुर साहब तो मूछित होकर भूमि पर गिर पड़े थे। नौकरों ने उनके मुँह पर गुलाब छिड़का और थोड़ी देर में वह सचेत हुए, उनकी मित्र मंडली में से तो कोई महाशय उस समय वहां उपस्थित नहीं थे। उनके पड़ोसियों ने जो, वहां एकत्र हो गये थे यह सम्मति दी कि स्त्री के मृत शरीर को गंगा-तट पर ले चलकर दाह-क्रिया करनी चाहिए। परन्तु डाक्टर साहब ने जो वहां फिर लौटकर आये थे, कहा कि पहिले तो इस मकान को छोड़कर दूसरे में चलना चाहिए, पीछे और सब खटराग किया जायगा। ठाकुर साहब को भी यह राय पसन्द आई, क्योंकि उन्होंने तो रात ही से भागने का इरादा कर रखा था, वह तो केवल उस लड़के के अनुरोध से रुके हुए थे। परन्तु क्या उस लड़के को उस समय भी वहां से ले चलना सहज था? नहीं, वह तो अपनी मृत माता के निकट से जाना ही नहीं चाहता था। बार-बार उसी पर जाकर गिर पड़ता था और उसकी अधखुली आंखों की ओर देख-देखकर रोता और माता-माता कहकर पुकारता था। उसका रुदन सुनकर देखने वालों की छाती फटती थी और उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बहती थी। अन्त में ठाकुर साहब ने उस बालक को पकड़कर गोद में उठा लिया और गाड़ी में बिठाल कर दूसरे मकान की ओर रवाना हुए। अलबत्त: चलती बार ठाकुर साहब ने स्त्री के मृत शरीर की ओर देखकर कुछ अंगरेजी में कहा था, जिसका एक शब्द मुझे याद है, फेअरवेल् (Farewell)। नौकर सब ठाकुर साहब ही के साथ रवाना हो गये, परन्तु उनका एक पुराना नौकर उस मकान की रक्षा के लिए वहीं रह गया। पड़ोसी लोग भी इस दुर्घटना से दुखी होकर अपने घरों को लौट गये, परन्तु एक पड़ोसी के हृदय पर इन सब बातों का ऐसा असर हुआ कि वह वहीं बैठा रह गया और मन में सोचने लगा कि ऐसी दशा में पड़ोसी का धर्म क्या है? इस देश की यह रवाज है कि जब तक मुहल्ले में मुर्दा पड़ा रहता है तब तक कोई नहाता-खाता नहीं, जब उसकी दाह-क्रिया का सब सामान ठीक हो जाता है और लोग उसको वहां से उठा ले जाते हैं, तब पड़ोसी लोग अपने-अपने दैनिक कार्यों के करने में तत्पर होते हैं। परन्तु यहां का यह हाल देखकर वह बहुत विस्मित होता था और सोचता था कि यदि ठाकुर साहब भय के मारे अपने इलाके पर भाग गये तो मृतक की क्या दशा होगी, क्या इस पुण्यवती स्त्री का शरीर ठेले ही पर लद के जायगा? उसने उस बुड्ढे नौकर के आगे अपनी कल्पनाओं को प्रकाशित किया। उसने उत्तर दिया कि अभी ठाकुर साहब की प्रतीक्षा करनी चाहिए, देखें वह क्या आज्ञा देते हैं। वह पड़ोसी भी यही यथार्थ समझ के चुप हो गया और संसार की असारता और प्राणियों के प्रेम की निर्मूलता पर विचार करने लगा। उस समय उसे नानकजी का यह पद याद आया "सबै कुछ जीवत को व्यवहार" और सूरदास का "कुसमय मीत काको कौन" भी स्मरण आया। पर समय की प्रतिकूलता देख वह इन पदों को गा न सका, मन-ही-मन गुनगुनाता रहा। इतने ही में ठाकुर साहब के दो नौकर वापस आये और उन्होंने बूढ़े नौकर से कहा कि हम लोग पहरे पर मुकर्रर हैं और तुमको ठाकुर साहब ने बुलाया है। वह मत्तन सौदागर के मकान में ठहरे हैं। वहीं तुम जाओ। उस बुड्ढे का नाम सत्यसिंह था। जब वह उक्त स्थान पर पहुंचा तो उसने देखा कि ठाकुर साहब के चन्द मित्र, जो वकील, महाजन और अमले थे, इकट्ठे हुए हैं और वे सब एकमत होकर यही कह रहे हैं कि आप अपने इलाके पर चले जाइए, दाह-क्रिया के झंझट में मत पड़िये, यह कर्म आपके नौकर कर देंगे, क्योंकि जब प्राण बचा रहेगा तो धर्म की रक्षा हो जायगी। तब ठाकुर साहब ने इस विषय में पुरोहितजी की सम्मति पूछी। उन्होंने भी उस समय हां में हां मिलाना ही उचित समझा और कहा कि धर्मशास्त्रानुसार ऐसा हो सकता है; इस समय चाहे जो दग्ध कर दे, इसके अनन्तर जब सुभीता समझा जायगा आप एक पुतला बनाकर दग्ध-क्रिया कर दीजिएगा।

इतना सुनते ही ठाकुर साहब ने पुरोहित जी से कहा यह ३०) लीजिए और मेरे आठ नौकर साथ ले जाकर कृपा करके आप दग्ध-क्रिया करवा दीजिए और मुझे इलाके

पर जाने की आज्ञा दीजिए। यह कहकर लड़के को साथ लेकर और मित्रों से विदा होकर ठाकुर साहब इलाके पर पधारे और पुरोहितजी सत्यसिंह प्रभृति आठ नौकरों को लेकर उनके घर पर गये। सीढ़ी बनवाते और कफन इत्यादि मंगवाते सायंकाल हो गया। जब नाइन बहूजी को कफनाने लगी, उसने कहा इनका शरीर तो अभी बिलकुल ठंढा नहीं हुआ है और आंखें अधखुली सी हैं, मुझे भय मालूम होता है। पुरोहितजी और नौकरों ने कहा यह तेरा भ्रम है, मुर्दे में जान कहां से आई। जल्दी लपेट, ताकि गंगा तट ले चलकर इसका सतगत करें। रात होती जाती है, क्या मुर्दे के साथ हम लोगों को भी मरना है। ठाकुर साहब तो छोड़ ही भागे, अब हम लोगों को इन पचड़ों से क्या मतलब है, किसी तरह फूंक-फांककर घर चलना है। क्या इसके साथ हमें भी जलना है ?सत्यसिंह ने कहा भाई, जब नाइन ऐसा कहती है तो देख लेना चाहिए, शायद बहूजी की जान न निकली हो। ठाकुर साहब तो जल्दी से छोड़ भागे, डाक्टर दूर ही से देखकर चला गया, ऐसी दशा में अच्छी तरह जांच कर लेनी चाहिए। सब नौकरों ने कहा सत्य-सिंह तुम तो सठिया गये हो, ऐसा होना असम्भव है। बस, देर न करो, ले चलो। यह कहकर मुर्दे को सीढ़ी पर रख कन्धे पर उठा सत्यसिंह का वचन असत्य और राम नाम सत्य कहते हुए दशाश्वमेध घाट की ओर ले चले। रास्ते में एक नौकर कहने लगा ७ बज गये हैं, दग्ध करते-करते तो १२ बज जावेंगे। दूसरे ने कहा फूंकने में निस्सन्देह सारी रात बीत जायगी। तीसरे ने कहा यदि ठाकुर साहब कच्चा ही फेंकने को कह गए होते तो अच्छा होता। चौथे ने कहा मैं तो समझता हूं कि शीतला, हैजा और प्लेग से मरे हुए मृतक को कच्चा ही बहा देना चाहिए। पांचवें ने कहा यदि पुरोहितजी की राय हो तो ऐसा ही कर दिया जाय। पुरोहितजी ने जिसे रात्रि समय स्मशान में जाते डर मालूम होता था, कहा जब पांच पंच की ऐसी राय है तो मेरी भी यही सम्मति है और विशेषकर इस कारण कि जब एक बार ठाकुर साहब को नरैनी, अर्थात् पुतला, बनाकर जलाने का कर्म करना ही पड़ैगा तो इस समय दग्ध करना अत्यावश्यक नहीं है। छठवें और सातवें नौकरों ने कहा बस चलकर मुर्दे को कच्चा ही फेंक दो, ठाकुर साहब से कह दिया जायगा कि जला दिया गया। परन्तु सत्यसिंह जो यथा नामः तथा गुणः बहुत सच्चा और ईमानदार नौकर था, कहने लगा मैं ऐसा करना उचित नहीं समझता, मालिक का कहना और मुर्दे की गति करना हमारा धर्म है, यदि आप लोग मेरा कहना न मानें तो मैं यहीं से घर लौट जाता हूं, आप लोग चाहें जैसा करें और चाहे जैसा ठाकुर साहब से कहें; यदि वह मुझसे पूंछेंगे तो मैं सच्च सच्च कह दूंगा। यह सुनकर नौकर घबराये और कहने लगे कि भाई इन ३०) में से जो ठाकुर साहब ने दिये हैं, तुम सबसे अधिक हिस्सा ले लो, लेकिन, यह वृत्तान्त ठाकुर साहब से मत कहना। सत्यसिंह ने कहा मैं हरामखोर नहीं हूं, ऐसा मुझसे कदापि न होगा, लो मैं घर जाता हूं, तुम लोगों के जी में जो आवे सो करना। जब यह कहकर वह बुड्ढा नौकर चला गया तो बाकी नौकर जी में बहुत डरे और पुरोहितजी से कहने लगे कि अब क्या करना चाहिए, बुड्ढा तो सारा भेद खोल देगा और हम लोगों को मौकूफ करा देगा। पुरोहित ने कहा तुम लोग कुछ मत डरो, अच्छा हुआ कि बुड्ढा चला गया; अब चाहे जो करो; ठाकुर साहब से मैं कह दूंगा कि मुर्दा जला दिया गया, वह मेरा विश्वास बुड्ढे से भी अधिक करते हैं। ३०) में से ७) तो सीढ़ी और कफन में खर्च हुए हैं, दो-दो रुपये तुम सात आदमी ले लो, बाकी ९ रुपये मुझे नवग्रह का दान दे दो, मुर्दे को जल में डाल कर राम-राम कहते हुए कुछ देर रास्ते में बिताकर कोठी पर लौट जाओ, ताकि पड़ोसी लोग समझें कि अवश्य ये लोग मुर्दे को जला आए। यह सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और २३) आपस में बांटकर मुर्दे को ऐसे अवघट घाट पर ले गये जहां न कोई डोम कफन मांगने को था, न कोई महाब्राह्मण दक्षिणा मांगने को। वहां पहुंचकर उन्होंने ऐसी जल्दी की कि सीढ़ी समेत मुर्दे को जल में डाल दिया और राम-राम कहते हुए करारे पर चढ़ आये क्योंकि एक तो वहां अंधेरी रात वैसे ही भयानक मालूम होती थी, दूसरे वे लोग यह डरते थे कि कहीं सरकारी चौकीदार आकर गिरफ्तार न कर लें, क्योंकि सरकार की तरफ से कच्चा मुर्दा फेंकने की मनाही थी। निदान वे बेईमान नौकर इस तरह स्वामी की आज्ञा भंग करके उस अविश्वसनीय पुरोहित के साथ घर लौटे।

अब सुनिए उस मुर्दे की क्या गति हुई। उस सीढ़ी के बांस ऐसे मोटे और हलके थे जैसे नौका के डांड़ और

उस स्त्री का शरीर कृशित होकर ऐसा हलका हो गया था कि उसके बोझ से वह सीढ़ी पानी में नहीं डूबी और इस तरह उतराती चली गई जैसे बांसों का बेड़ा बहता हुआ चला जाता है। यदि दिन का समय होता तो किनारे पर के लोग अवश्य इस दृश्य से विस्मित होते और कौवे तो जरूर कुछ खोदखाद मचाते। परन्तु रात का समय था, इससे वह शव सहित सीढ़ी का बेड़ा धीरे-धीरे बहता हुआ त्रिवेणी पार करके प्रायः पांच मील की दूरी पर पहुंचा। पर यह तो कोई अचम्भे की बात न थी। अत्यन्त आश्चर्य-जनक घटना तो यह हुई कि गंगाजल की शीतलता उस सोपान स्थित शरीर के लिए, जिसे लोगों ने निर्जीव समझ लिया था, ऐसी उपकारी हुई कि जीव का जो अंश उसमें रह गया था वह जग उठा और बहूजी को कुछ होश आया। परन्तु अपने को इस अद्भुत दशा में देख वह भौंचक सी रह गईं। उनके शरीर का यह हाल था कि प्राणान्तक ज्वराग्नि तो बुझ गई थी, परन्तु गले में की गिल्टी ऐसी पीड़ा दे रही थी कि उसके कारण वह कभी-कभी अचेत सी हो जाती थीं। परन्तु जब उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा होती है तो अनायास प्राणरक्षा के उपाय उपस्थित हो जाते हैं। निदान वह सीढ़ी बहते-बहते ऐसी जगह जा पहुंची जहां करौंदे का एक बड़ा भारी पेड़ तट पर खड़ा था और उसकी एक घनी डाली झुककर जल में स्नान कर रही थी और अपने क्षीरमय फल-फूल गंगाजी को अर्पण कर रही थी। वह सीढ़ी जाकर डाली से टकराई और उसी में उलझकर रुक गई और उस डाली में का एक कांटा बहूजी की गिल्टी में इस तरह चुभ गया जैसे किसी फोड़े में नश्तर। गिल्टी के फूटते ही पीड़ाजनक रुधिर निकल गया, और बहूजी को फिर चेत हुआ। झट उन्होंने अपना मुंह फेरकर देखा तो अपने को उस हरी शाखा की शीतल छाया में ऐसा स्थिर और सुखी पाया जैसे कोई श्रान्त-पथिक हिंडोले पर सोता हो। सूर्योदय का समय था, जल में किनारे की ओर कमल प्रफुल्लित थे और तटस्थ वृक्षों पर पक्षीगण कलरव कर रहे थे। उस अपूर्व शोभा को देखकर बहूजी अपने शरीर की दशा भूल गईं और मन में सोचने लगीं कि क्या मैं स्वर्गलोक में आ गई हूं, वा केवल स्वप्न अवस्था में हूं; और यदि मैं मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूं तो भी परमेश्वर मुझे इसी सुख-मय अवस्था में सर्वदा रहने दे। परन्तु इस संसार में सुख तो केवल क्षणिक होता है, "सुख की तो बौछार नहीं है दुख का मेंह बरसता है। यह मुर्दे का गांव रे बाबा, सुख महँगा दुख सस्ता है।" थोड़ी ही देर बाद पक्षीगण उड़ गये और लहरों के उद्वेग से कमलों की शोभा मन्द हो गई। सीढ़ी का हिण्डोला भी अधिक हिलने लगा, जिससे कृशित शरीर को कष्ट होने लगा, बहूजी का जी ऊबने लगा। परन्तु उनका वश क्या था, शरीर में शक्ति नहीं थी कि तैर-कर किनारे पर पहुंचें, हालां कि चार ही हाथ की दूर पर एक छोटा सा सुन्दर घाट बना हुआ था। वह मन में सोचने लगीं कि शायद मुझको मृतक समझ मेरे पति ने मुझे इस तरह बहा दिया है, परन्तु उनको ऐसी जल्दी नहीं करनी चाहिए थी; मेरे शरीर की अवस्था की जांच उन्हें भली भांति कर लेनी चाहिये थी; भला उन्होंने मेरा त्याग किया तो किया उनको बहुत स्त्रियां मिल जायेंगी, परन्तु मेरे नादान बच्चे की क्या दशा हुई होगी। अरे, वह मेरे वियोग के दुःख को कैसे सह सकता होगा! हा, वह कहीं रो रो के मरता होगा! उसको मेरे सदृश माता कहां मिल सकती है, विमाता तो उसको और भी दुःख-दायिनी होगी। हे परमेश्वर! यदि मैं मृत्युलोक ही में हूं तो मेरे बालक को शान्ति और मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कर कि मैं इस दशा से मुक्त होकर अपने प्राणप्रिय पुत्र से मिलूं। इतना कहते ही एक ऐसी लहर आई कि कई घूंट पानी उनके मुख में चला गया। गंगाजल के पीते ही शरीर में कुछ शक्ति सी आ गई और पुत्र के मिलने की उत्कण्ठा ने उनको ऐसा उत्तेजित किया कि वह हाथों से धीरे-धीरे उस सीढ़ी रूपी नौका को खेकर किनारे पर पहुंच गईं। अब बांस की सीढ़ी छोड़ हाथों के सहारे से उस घाट की सीढ़ियों पर चढ़ गईं, परन्तु श्रम से मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। कुछ देर बाद जब होश आया तो उस स्थान की रमणीयता देखकर फिर उन्हें यही जान पड़ा कि मैं मरने के पश्चात् स्वर्गलोक में आ गई हूं। गंगाजी के उज्ज्वल जल का मन्द-मन्द प्रवाह आकाशगंगा की शोभा दिखाता था और किनारे-किनारे के स्थिर जल में फूले हुए कमल ऐसे देख पड़ते थे जैसे आकाश में तारे।

दोहा – गंगा के जल गात पै दल जलजात सोहात।
जैसे गोरे देह पै नील वस्त्र दरसात॥

तट पर अम्ब कदम्ब अशोकादि वृक्षों क श्रेणियां

दूर तक चली गई थीं और उनके समीप के उपवन की शोभा "जहां वसंत ऋतु रह्यो लुभाई" ऐसी मनोहर थी कि मनुष्य का चित्त देखते ही मोहित हो जाता था। कहीं करौंदे, कौरैया इन्द्रबेला आदि के वृक्ष अपने फूलों की सुगन्ध से स्थानों को सुवासित कर रहे थे, कहीं बेला, चमेली, केतकी चम्पा की फूलों से लदी हुई डालियां एक दूसरे से मिली हुई यों देख पड़ती थीं जैसे पुष्पों की माला पहिने हुए सुन्दर बालिकाएं एक से एक हाथ मिलाए खड़ी हों। उनके बीच-बीच में ढाक के वृक्ष लाल फूलों से ढके हुए यों देख पड़ते थे जैसे संसारियों के समूह में विरक्त वनवासी खड़े हों। इधर तो इन विरक्तों के रूप ने बहूजी को अपनी वर्तमान दशा की ओर ध्यान दिलाया; उधर कोकिला की कूक ने हृदय में ऐसी हूक पैदा की कि एक बार फिर बहूजी पति के वियोग की व्यथा से व्याकुल हो गईं, कहने लगीं कि इस शोकसागर में डूबने से बेहतर यही होगा कि गंगाजी में डूब मरूं। फिर सोचा कि पहिले यह तो मैं विचार लूं कि मेरा मरना भी सम्भव है या नहीं, यदि मैं स्वर्गलोक के किसी भाग में आ गई हूं तो यहां मृत्यु कैसे आ सकती है। परन्तु यह स्वर्गलोक नहीं जान पड़ता, क्योंकि स्वर्ग में शारीरिक और मानसिक दुःख नहीं होते, और मैं यहां दोनों से पीड़ित हो रही हूं। इनके अतिरिक्त अब मुझे क्षुधा भी मालूम होती है। बस, निस्सन्देह मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूं। यदि मैं मनुष्य ही के शरीर में अब तक हूं और मरकर पिशाची नहीं हो गयी हूं, तो मेरा धर्म यही है कि मैं अपने अल्पवयस्क बालक को ढूंढ़कर गले से लगाऊं। परन्तु मैं शारीरिक शक्तिहीन अबला इस निर्जन स्थान में किसे पुकारूं, किधर जाऊं! हे करुणामय जगदीश्वर तू ही मेरी सुध ले, यदि तुने द्रौपदी, दमयन्ती आदि अबलाओं की पुकार सुनी है तो मेरी भी सुन। यह कहकर गंगाजी की ओर मुंह फेर घाट पर बैठ गईं और जल की शोभा देखने लगीं। इतने ही में दक्षिण दिशा से एक दासी हाथ में घड़ा लिए गंगाजल भरने को आयी। जब उसने पीछे ही से देखा कि कोई स्त्री कफन का श्वेत कपड़ा पहिने अकेली चुपचाप बैठी है, उसके मन में कुछ शंका हुई। जब उसने देखा कि नीचे पानी में एक मुर्दावाली सीढ़ी भी तैर रही है तब तो उसे अधिक भय मालूम हुआ और उसने सोचा कि अवश्य कोई मरी हुई स्त्री चुड़ैल होकर बैठी है। जब उसके पांव की आहट पाकर बहूजी ने उसकी ओर मुंह फेरा और गिड़गिड़ाकर उससे कुछ पूछने लगी तो वह उनकी खोड़राई हुई आंखें और अधमरी स्त्री की सी चेष्टा देखकर भय से चिल्ला उठी और चुड़ैल-चुड़ैल करके वहीं घड़ा पटककर भागी। बहूजी ने गला फाड़ फाड़कर उसे बहुत पुकारा पर वह न लौटी और अपने ग्राम में ही जाकर उसने दम लिया। जब उसकी भयभीत दशा देखकर और स्त्रियों ने उसका कारण पूछा तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया, परन्तु वह ऐसी डर गई थी कि बार-बार घाट ही की ओर देखती थी कि कहीं वह चुड़ैल पीछे-पीछे आती न हो। उस समय ग्राम के कुछ मनुष्य खेत काटने चले गये थे और कुछ ठाकुर विभवसिंह के साथ टहलने निकल गये थे। केवल स्त्रियां और लड़के गांव में रह गये थे। उनमें से किसी को यह साहस नहीं होता था कि घाट पर जाकर उस दासी की अपूर्व कथा की जांच करें। चुड़ैल का नाम सुनते ही वे सब ऐसी डर गई थीं कि अपने-अपने लड़कों को घर में बन्द करने लगीं कि कहीं चुड़ैल आकर उन्हें चबा न डाले। उस समय ठाकुर साहब का लड़का नवलसिंह भी अपनी मृत माता को स्मरण कर-कर नेत्रों से आंसू बहाता हुआ इधर-उधर वहीं घूम रहा था और लड़कों के साथ खेलने को उसे इच्छा नहीं होती थी। जब एक स्त्री ने उससे भी कहा कि भैया तुम अपने बँगले में छिप जाओ, नहीं तो वह चुड़ैल आकर तुम्हें पकड़ लेगी, वह आश्चर्यित होकर पूछने लगा कि चुड़ैल कैसी होती है और कहां है। यदि वह यहां आवैगी भी तो मुझे क्यों पकड़ैगी, मैंने उसकी कोई हानि नहीं की है। इधर तो यह बातें हो रही थीं, उधर बहूजी निरास होकर फिर मन में सोचने लगीं कि यह तो निश्चय है कि मैं अभी तक मृत्यु लोक ही में हूं; पर क्या वास्तव में मेरा पुनर्जन्म हुआ है, क्या मैं सचमुच चुड़ैल हो गयी हूं जैसा कि वह स्त्री मुझे देखकर कहती हुई भागी है। अवश्य इसमें कुछ भेद है, वरन् मैं इन कृशित अंगों पर कफन सा श्वेत वस्त्र लपटाए, काले नागों के से बालों के लट लटकाए हुए इस अज्ञात निर्जन स्थान में कैसे आ जाती। हे विधाता! मैंने कौन-सा पाप किया जो तूने मुझे चुड़ैल का जन्म दिया? क्या पातिव्रत धर्म का यही फल है। अब मैं इस अवस्था में अपने प्यारे पुत्र को कहां पाऊंगी और यदि पाऊंगी तो कैसे उसे गले लगाऊंगी। वह तो मेरी डरावनी सूरत देखते ही भागेगा। पर जो हो म उसे अवश्य तलाश करूंगी और यदि वह मुझसे सप्रेम नहीं

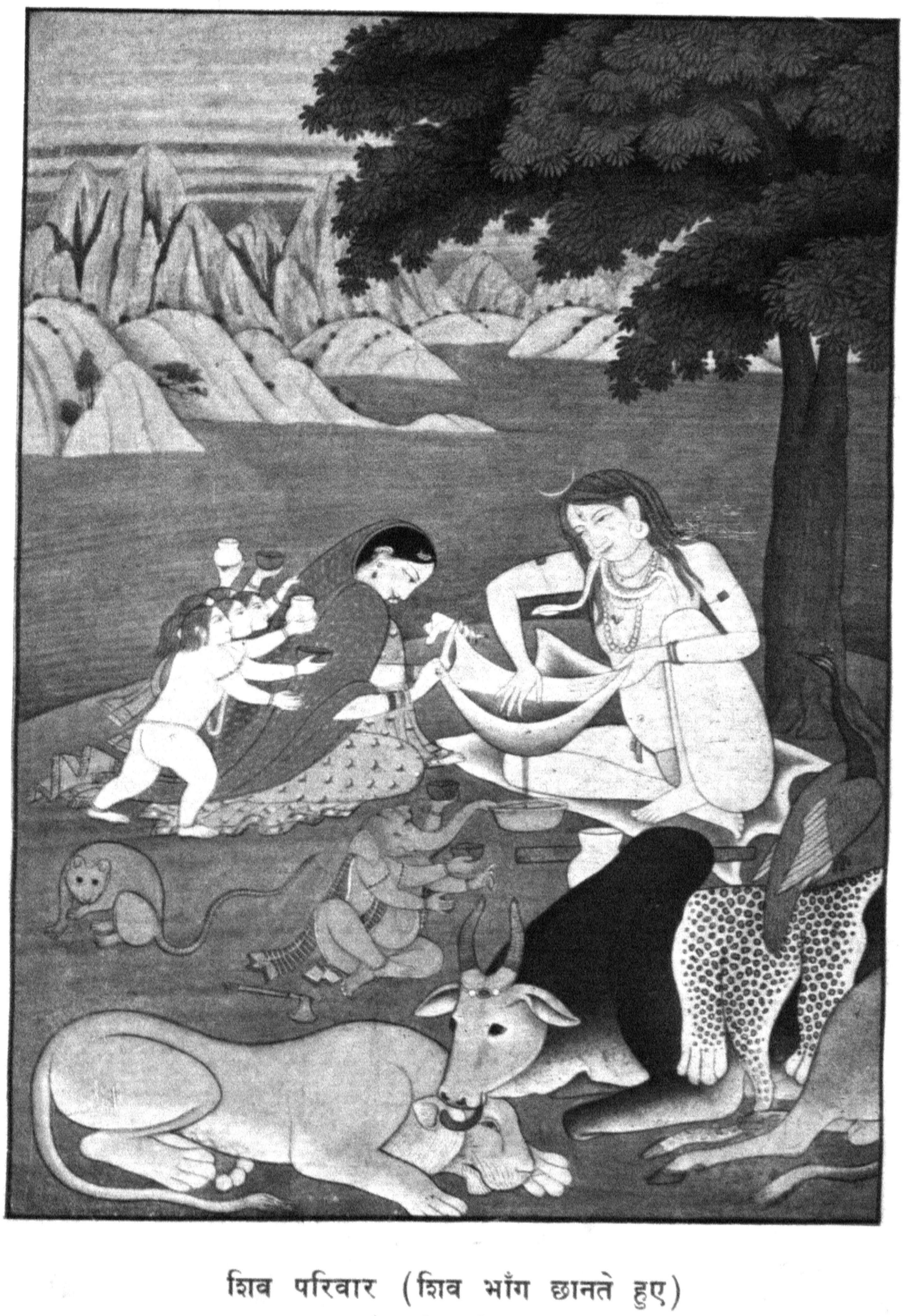
मिलेगा तो उसको भी इसी दशा में परिवर्तित करने की चेष्टा करूंगी। यह कहकर वह धीरे-धीरे उसी ओर चली जिधर वह दासी भागी थी। दुर्बलता के मारे सारा देह कांपता था, पर क्या करै क्षुधा के मारे रहा नहीं जाता था। निदान खिसकते खिसकते उपवन डाककर वह एक बाटिका में पहुंची, जिसमें अमरूद, नारंगी, फालसा, लीची, सन्तरा इत्यादि के पेड़ लगे हुए थे और क्यारियों में अनेक प्रकार के अंगरेजी और हिन्दुस्तानी फूल फले हुए थे। बाटिका के दक्षिण ओर एक छोटा सा बँगला बना हुआ था, जिसको देखकर बहूजी ने मन में कहा यह तो वैसाही बँगला मालूम होता है जैसा मेरे इलाके पर के बगीचे में बना हुआ है। क्या मैं ईश्वर की कृपा से अपनी ही बाटिका में तो नहीं आ गई हूँ? अरे, यह पुष्पमंडप भी तो वैसा ही जान पड़ता है जिसमें तीन वर्ष हुए मैं नवलजी को गोद में लेकर खेलाती थी। मैं जब यहां आई थी तो ग्राम की स्त्रियों से सुना था कि निकट ही गंगाजी का घाट है। मैंने ठाकुर साहब से वहां स्नान करने की आज्ञा मांगी थी, परन्तु उन्होंने नहीं दी। क्या उसी पाप का तो यह फल नहीं है कि मैं इस दशा को प्राप्त हुई हूं। परन्तु उसमें मेरा क्या दोष था, स्त्री के लिए तो पति की आज्ञा पालन करना ही परम धर्म है। यह फल मेरे किसी और जन्म के पापों का मालूम होता है। इसी तरह मन में अनेक कल्पनाएं करती हुई बहूजी एक नारंगी के पेड़ के नीचे बैठ गईं और लटकी हुई डाल से एक नारंगी तोड़कर अपनी प्रज्वलित क्षुधाग्नि को बुझाना चाहती थीं कि इतने में नवलसिंह घूमता-घूमता उसी स्थान पर आ गया। उसको देखते ही बहूजी की भूख-प्यास जाती रही। जैसे मृगी अपने खोए हुए शावक को पाकर उसकी ओर दौड़ती है, वैसे ही बहूजी झपटकर नवलसिंह से लपट गईं और "बेटा नवलजी, बेटा नवलजी" कहकर उसका मुख चूमने लगीं। उस समय नवलसिंह की अपूर्व दशा थी। कभी तो बहूजी की डरावनी सूरत देखकर भय से भागना चाहता था, कभी माता के मुख की आकृति स्मरण करके प्रेमाश्रु बहाने लगता था और भोलेपन से पूछता था कि माता तुम मरके फिर जी उठी हो और चुड़ैल हो गई हो? हम लोग तो तुमको घर ही पर छोड़ आए थे, तुम अकेली गिरती-पड़ती यहां कैसे आ गई हो? बहूजी ने कहा बेटा, मैं नहीं जानती कि मैं कैसे इस दशा को प्राप्त हुई हूं। यदि मेरा शरीर बदल गया है और मैं चुड़ैल हो गई हूं, तो भी मेरा हृदय पहिले ही का सा है और मैं तुम्हारी ही तलाश में खिसकते-खिसकते इधर आई हूं।

इधर तो इस प्रकार प्रेमालिंगन और प्रश्नोत्तर हो रहा था, उधर ग्राम्य स्त्रियों ने दूर ही से यह घटना देखकर हाहाकार मचाया और कहने लगीं, "अरे, नवलजी को चुड़ैल ने पकड़ लिया! चलियो! दौड़ियो! बचाइयो! अरे, यह क्या अनर्थ हुआ! हम लोग क्या जानती थीं कि वह डाइन बाटिका में आ बैठी है, नहीं तो नवलजी को क्यों उधर जाने देतीं।" इसी तरह सब दूर ही से कौआरोर मचा रही थीं, परन्तु डर के मारे कोई निकट नहीं जाती थीं। इतने ही में विभवसिंह और उनके साथ जो गांव के आदमी टहलने गये थे, वापस आ गए। यह कोलाहल देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दासी के मुंह से वृत्तान्त सुनकर ठाकुर साहब ने कहा मुझे प्रेतयोनि में तो विश्वास नहीं है, पर ईश्वर की अद्भुत माया है, शायद सच ही हो। यह कहकर और झट बँगले में से तमंचा लेकर वह उसी नारंगी के पेड़ की ओर झपटे, जहां नवलसिंह को चुड़ैल पकड़े हुई थी और गांव वाले भी लाठी ताने हुए उसी ओर दौड़े। पिता को आते देख लड़के ने चाहा कि अपनी माता के हाथों से अपने को छुड़ाकर और दौड़कर अपने पिता से शुभ सन्देश कहे; लेकिन उसकी माता उसे नहीं छोड़ती थी। ठाकुर साहब ने दूर ही से यह हाथापाई देखकर समझा कि अवश्य चुड़ैल उसे जोर से पकड़े है और ललकारकर कहा "बेटा घबड़ाओ मत, मैं आया॥" जब पास पहुंचे, उन्होंने चाहा कि चुड़ैल को गोली मारकर गिरा दें, पर लड़के ने चिल्ला के कहा "इन्हें मारो मत, मारो मत, माता हैं, माता हैं।" ठाकुर साहब को उस घबड़ाहट में लड़के की बात समझ में नहीं आई और चूंकि वह पिस्तौल तान चुके थे, उन्होंने फायर कर ही दिया। आवाज होते ही बहूजी अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं, और लड़का चौंककर जमीन पर बैठ गया। ठाकुर साहब ने उसे गोद में उठा लिया और कहा "बेटा डरो मत, अब तुम बच गये, बताओ तो यह कौन है, क्या वास्तव में चुड़ैल है? बहूजी को अचेत देख सब आदमी चिल्ला के कहने लगे "चुड़ैल मर गयी, चुड़ैल मर गयी।" यह सुनकर स्त्रियां भी समीप आईं और चारों ओर खड़ी हो देखने लगीं। उनमें से वह दासी बोली यही दुष्टिन चुड़ैल है जो घाट पर बैठी थी और यहां आकर

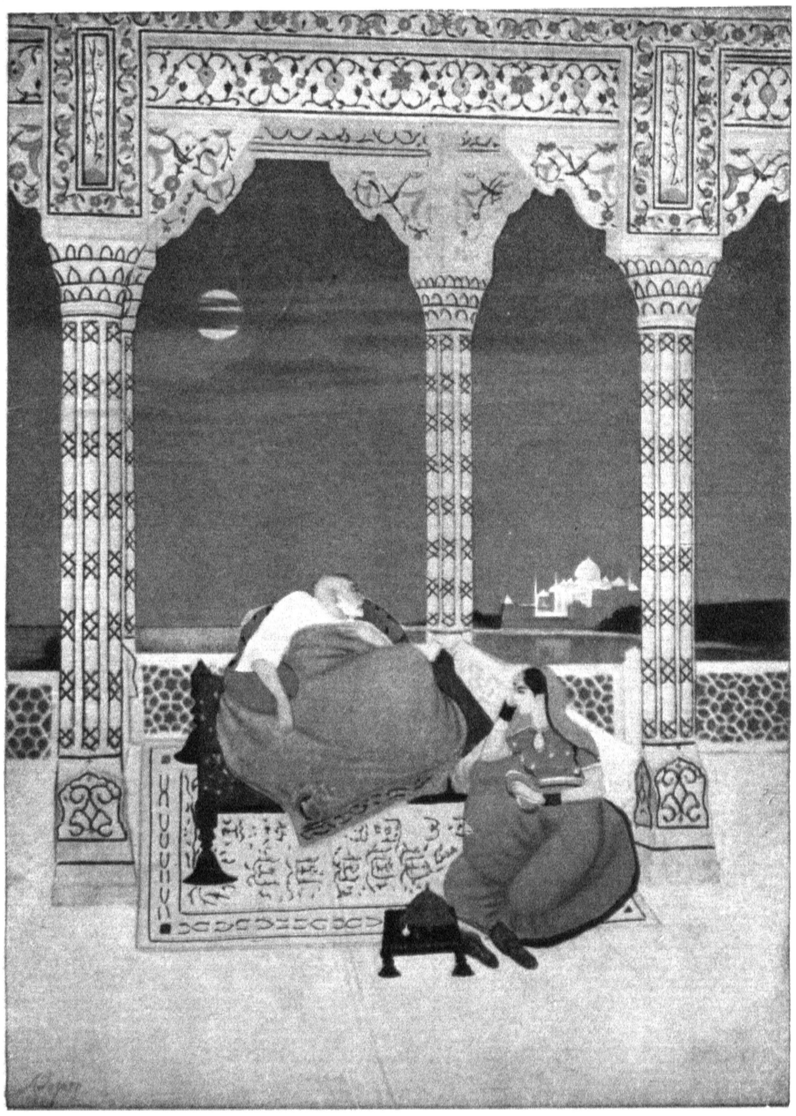
नवलजी को निगलना चाहती थी। दूसरी स्त्रियां कहने लगीं हमने तो सुना था कि डाइनों और चुड़ैलों के बड़े-बड़े दांत और नख होते हैं, इसके तो वैसे नहीं है, यह निगोड़ी किस प्रकार की चुड़ैल है? एक ने कहा कि यह डाइन की बच्ची है, बढ़ने पर इसके भी दांत बड़े होते।

इधर तो यह ठठोलियां हो रही थीं उधर जब नवलसिंह को निश्चय हुआ कि माता गोली की चोट से मर गई तो वह शोक के मारे अचेत हो गया। अब सब लोग भयातुर होकर उसकी ओर देखने लगे। कोई कहता था कि यह पिस्तौल की आवाज से डर गया है, कोई कहता था कि इसे चुड़ैल लग गयी है। निदान जब वह कुछ होश में आया तो रो-रो के कहने लगा "यह तो मेरी माता है मैंने तो मना किया था आपने इन्हें गोली से क्यों मारा?" ठाकुर साहब ने कहा "तुम्हारी माता तो मर गई और पुरोहितजी की चिट्ठी कल रात ही को आई कि उनको गंगा तट पर ले जाकर जला दिया, यह चुड़ैल तुम्हारी माता कैसे हो सकती है?" लड़के ने कहा "आप समीप जाकर पहिचानिये तो कि यह कौन है?" ठाकुर साहब ने निकट ध्यान देकर देखा तो मुख की आकृति उनकी स्त्री ही की सी देख पड़ी और मस्तक पर मस्सा भी वैसा ही देख पड़ा। जब छाती पर से कपड़ा हटाकर देखा तो हृदय पर दो तिल भी वैसे ही देख पड़े जैसे बहूजी के थे। तब तो ठाकुर साहब बड़े विस्मित हुए और कहने लगे "क्या आश्चर्य है, यह तो मेरी प्रिय पत्नी ही मालूम होती है।" फिर उन्होंने लड़के से कहा "बेटा, तुम सोच मत करो मैंने इन्हें गोली नहीं मारी है; तुमने जब मना किया तो मैंने आकाश की ओर यह समझ कर गोली चला दी कि यदि कोई बला होगी तो तमञ्चे की आवाज ही से भाग जायगी।" लड़के ने कहा "देखिए इनके गले में गोली का घाव है, आप कहते हैं कि मैंने गोली नहीं मारी।" ठाकुर साहब ने कहा "यह तो गिल्टी का घाव है, मेरी गोली तो आकाश में तारा हो गई।" इसके अनन्तर ठाकुर साहब ने सब लोगों को वहां से हटा दिया और स्वयं कुछ दूर पर खड़े होकर गांव की नाइन से कहा तुम बहूजी के सब अंगों को अच्छी तरह पहचानती हो। पास जाकर देखो तो कि वह वही हैं, कोई दूसरी स्त्री तो नहीं है। नाइन डरते-डरते पास गई और आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगी। इतने में बहूजी को कुछ होश आया और वह ज्यों ही उठ के बैठने लगीं त्यों ही नाइन भागकर दूर खड़ी हुई। बहूजी ने उसे पहचानकर कहा "अरी बदमियां! मेरा बच्चा कहां गया? नवलजी को जल्द बुला नहीं तो मेरा प्राण जाता है। ठाकुर साहब तो मेरे प्राण ही के भूखे हैं, प्रयागजी में मुझे बीमार छोड़कर भाग आए, जब मैं किसी तरह यहां आई तो मुझ पर गोली चलाई। न जाने मझसे क्या अपराध हुआ है। यदि प्लेग से मरकर मैं चुड़ैल हो गई हूं तो इस प्रेत शरीर से भी मैं उनकी सेवा करने को तैयार हूं। यदि वह मेरी इस वर्तमान दशा से घृणा करते हैं तो मझसे भी यह तिरस्कार नहीं सहा जाता, मैं अभी जाकर गंगाजी में डूब मरूंगी पर एक बार मेरे बच्चे को तो बुला दे, मैं उसे गले तो लगा लूं। अरे, उसे छोड़कर मुझसे कैसे जिया जायगा? हे परमेश्वर, तू यहीं मेरा प्राण ले ले।" यह कहकर वह उच्च स्वर से रोने लगीं। ठाकुर साहब से ये सच्चे प्रेम से भरे हुए वियोग के वचन नहीं सहे गए, उनका हृदय गद्गद हो गया, रोमांच हो आया और आंखों से आंसू गिरने लगे। झट दौड़कर उन्होंने बहूजी को उठा लिया और कहा "मेरे अपराध को क्षमा करो। मैंने जान-बूझकर तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया, यदि तुम मेरी पत्नी हो तो चाहे तुम मनुष्य देह में हो या प्रेत-शरीर में, तुम हर अवस्था में मुझे ग्राह्य हो। यद्यपि मेरे मन का सन्देह अभी नहीं गया है इसकी निवृत्ति का यत्न मैं धीरे-धीरे करता रहूंगा, पर तुमको मैं अभी से अपनी प्रिय-पत्नी मानकर ग्रहण करता हूं। यदि तुम्हारे संसर्ग से मुझे प्लेग पीड़ा व प्रेतबाधा भी हो जाय तो कुछ चिन्ता नहीं, मैं अब किसी आपत्ति से नहीं डरूंगा।" यह कहकर वह बहूजी को अपने हाथों का सहारा देकर लताभवन में ले गए और नवलजी को भी वहीं बुलाकर सब वृत्तान्त पूछने लगे।

इतने ही में सत्यसिंह भी शहर से आ गया। जब उसने गांव वालों से यह अद्‌भुत कथा सुनी तो वह उसका भेद समझ गया और ठाकुर साहब के सामने जाकर कहने लगा "महाराज! अब आप अपने मन से शंका दूर कीजिए, यह सचमुच बहूजी हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जब कल नाइन इनको कफनाने लगी थी तो उसने कहा था कि इनका देह गर्म है। मैंने इसकी जांच करने के लिए कहा, पर दुष्ट नौकरों ने न करने दिया और उन्होंने ले जाकर कच्चा ही गंगाजी में फेंक दिया। अच्छा हुआ, नहीं तो अब तक जलकर बहूजी राख हो गयी होतीं। मुझे निश्चय



शिव परिवार (शिव भाँग छानते हुए)
(प्राचीन चित्र)



मृत्युशय्या पर भी शाहजहाँ की दृष्टि ताजमहल पर
(चित्रकार–अवनीन्द्रनाथ ठाकुर)

है कि बहूजी की जान नहीं निकली थी, और गंगाजी की कृपा से वह बहती-बहती इसी घाट पर लगीं और जी उठीं। अब अपना भाग्य सराहिए, इनको फिर से अपनाइए और बधाई बजाइए।"

इतना सुनते ही ठाकुर साहब ने फिर क्षमा मांगी और निश्शंक हो बहूजी को अंक से लगाया और प्रेमाश्रु बहाए। बहूजी भी प्रेम से विह्वल होकर नवलजी को गोद में लेकर बैठ गईं और उनके कन्धे पर अपना सिर रख रोने लगीं।

जब गांववालों ने यह वृत्तान्त सुना तो वे आनन्द से फूल उठे और बहूजी के पुनर्जन्म के उत्सव में मृदंग मंजीरा और फाग के डफ बजाकर नाचने-गाने लगे, और स्त्रियां सब पान फूल मिठाई लेकर दौड़ीं और बहूजी को देवी मानकर उनका पूजन करने और क्षमा मांगने लगीं। बहूजी ने कहा इसमें तुम लोगों का कोई दोष नहीं, यह मेरा ही दुर्भाग्य था जिसने ऐसे दिन दिखाए। अब ईश्वर की कृपा से जैसे मेरे दिन लौटे हैं वैसे ही सबके लौटें।

[**टिप्पणी—सन् १९०१ में प्रयाग में पहिले-पहिल प्लेग फैली थी। प्लेग का वह आक्रमण बहुत भयंकर था। इस कहानी का महत्त्व यह है कि यह प्रदर्शित करती है कि हिंदी कहानी के उस आरम्भिक युग में भी हिन्दी कहानीकार इतने सजग थे कि तत्कालीन घटनाओं की उनके संचेत्य मन पर तुरन्त प्रतिक्रिया होती थी। प्लेग के छुतिहा रोग का इतना आतंक था कि स्वजन और प्रियजन भी रोगी को छोड़कर भाग जाते थे। उन दिनों दुःखांतक कहानियाँ लिखने की प्रथा न थी। इसलिए इसे सुखांतक बनाकर इस कहानी में प्लेग के आतंक का चित्रण किया गया है। —सम्पादक।**]

१९०२

❀ ❀ ❀

ग्यारह वर्ष का समय

श्री० रामचन्द्र शुक्ल

दिन भर बैठे-बैठे मेरे सिर में पीड़ा उत्पन्न हुई; मैं अपने स्थान से उठा और अपने एक नए एकान्तवासी मित्र के यहाँ मैंने जाना विचारा। जाकर मैंने देखा तो वे ध्यानमग्न सिर नीचा किये हुए कुछ सोच रहे थे। मुझे यह देखकर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि, यह कोई नई बात न थी। उन्हें थोड़े ही दिन पूरब से इस देश में आये हुआ है। नगर में उनसे मेरे सिवाय और किसी से विशेष जान-पहिचान नहीं है; और न वह विशेषतः किसी से मिलते-जुलते ही हैं। केवल मुझसे, मेरे भाग्य से, वे मित्र-भाव रखते हैं। उदास तो वे हर समय रहा करते हैं। कई बेर उनसे मैंने इस उदासीनता का कारण पूछा भी; किन्तु मैंने देखा कि उसके प्रगट करने में उन्हें एक प्रकार का दुःख-सा होता है; इसी कारण मैं विशेष पूछ-ताछ नहीं करता।

मैंने पास जाकर कहा—"मित्र! आज तुम बहुत उदास जान पड़ते हो। चलो थोड़ी दूर तक घूम आवें। चित्त बहल जायगा।"

वे तुरन्त खड़े हो गए और कहा "चलो मित्र मेरा भी यही जी चाहता है। मैं तो तुम्हारे यहां जाने वाला था।"

हम दोनों उठे और नगर से पूर्व की ओर का मार्ग लिया। मार्ग के दोनों ओर की कृषिसम्पन्न भूमि की शोभा का अनुभव करते और हरियाली के विस्तृत राज्य का अवलोकन करते हम लोग चले। दिन का अधिकांश अभी शेष था, इससे चित्त को स्थिरता थी। पावस की जरावस्था थी इससे ऊपर से भी किसी प्रकार के अत्याचार की संभावना न थी। प्रस्तुत ऋतु की प्रशंसा भी हम दोनों बीच-बीच में करते जाते थे।

अहा! ऋतुओं में उदारता का अभिमान यही कर सकता है। दीन कृषकों को अन्नदान और सूर्यातप-तप्त पृथिवी को वस्त्रदान देकर यश का भागी यही होता है इसे तो कवियों की "कौंसिल" से "रायबहादुर" की उपाधि मिलनी चाहिए। यद्यपि पावस की युवावस्था का समय नहीं है; किन्तु उसके यश की ध्वजा फहरा रही है। स्थान-

स्थान पर प्रसन्न-सलिल-पूर्ण ताल अद्यापि उसकी पूर्व उदारता का परिचय दे रहे हैं।

एतादृश भावों की उलझन में पड़कर हम लोगों का ध्यान मार्ग की शुद्धता की ओर न रहा। हम लोग नगर से बहुत दूर निकल गए। देखा तो शनैः शनैः भूमि में परिवर्तन लक्षित होने लगा; अरुणता-मिश्रित पहाड़ी रेतीले भूमि, जंगली बैर-मकोय की छोटी-छोटी कण्टकमय झाड़ियां, दृष्टि के अन्तर्गत होने लगीं। अब हम लोगों को जान पड़ा कि हम दक्षिण की ओर झुके जा रहे हैं। संध्या भी हो चली। दिवाकर की डूबती हुई किरणों की अरुण आभा झाड़ियों पर पड़ने लगी। इधर प्राची की ओर दृष्टि गई; देखा तो चन्द्रदेव पहिले ही से सिंहासनारूढ़ होकर एक पहाड़ी के पीछे से झांक रहे थे।

अब हम लोग नहीं कह सकते कि किस स्थान पर हैं। एक पगडण्डी के आश्रय अब तक हम लोग चल रहे थे, जिस पर उगी हुई घास इस बात की शपथ खा के साक्षी दे रही थी कि वर्षों से मनुष्यों के चरण इस ओर नहीं पड़े हैं। कुछ दूर चलकर यह मार्ग भी तृण सागर में लुप्त हो गया। "इस समय क्या कर्त्तव्य है ?" चित्त इसी के उत्तर की प्रतीक्षा में लगा। अन्त में यह विचार स्थिर हुआ कि किसी किसी खुले स्थान से चारों ओर देखकर यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है कि हम लोग अमुक स्थान पर हैं।

दैवात् सम्मुख ही एक ऊंची पहाड़ी देख पड़ी, उसी को इस कार्य के उपयुक्त स्थान हम लोगों ने विचारा। ज्यों-त्यों करके पहाड़ी के शिखर तक हम लोग गए। ऊपर आते ही भगवती जह्नुनन्दिनी के दर्शन हुए। नेत्र तो सफल हुए। इतने में चारु-हासिनी चन्द्रिका भी अट्टहास करके खिल पड़ी। उत्तर-पूर्व की ओर दृष्टि गई। विचित्र दृश्य सम्मुख उपस्थित हुआ! जाह्नवी के तट से कुछ अन्तर पर नीचे मैदान में, बहुत दूर, गिरे हुए मकानों के ढेर स्वच्छ चन्द्रिका में स्पष्ट रूप से दिखाई दिए।

मैं सहसा चौंक पड़ा और ये शब्द मेरे मुख से निकल पड़े "क्या यह वही खंडहर है जिसके विषय में यहां अनेक दन्तकथाएं प्रचलित हैं ?" चारों ओर दृष्टि उठाकर देखने से मझे पूर्णरूप से निश्चय हो गया कि हो न हो यह वही स्थान है जिसके सम्बन्ध में मैंने बहुत कुछ सुना है। मेरे मित्र मेरी ओर ताकने लगा। मैंने संक्षेप से उस खडहर के विषय में जो कुछ सुना था उनसे कह सुनाया। हम लोगों के चित्त में कौतूहल की उत्पत्ति हुई; उसको निकट से देखने की प्रबल इच्छा ने मार्गज्ञान की व्यग्रता को हृदय से बहिर्गत कर दिया। उत्तर की ओर उतरना बड़ा दुष्कर प्रतीत हुआ, क्योंकि जंगली वृक्षों और कंटकमय झाड़ियों से पहाड़ी का वह भाग आच्छादित था। पूर्व की ओर से हम लोग सुगमतापूर्वक नीचे उतरे। यहाँ से खंडहर लगभग डेढ़ मील के प्रतीत होता था। हम लोगों ने पैरों को उसी ओर मोड़ा; मार्ग में घुटनों तक उगी हुई घास पग-पग पर बाधा उपस्थित करने लगी; किन्तु अधिक विलम्ब तक यह कष्ट हम लोगों को भोगना न पड़ा; क्योंकि आगे चलकर फूटे हुए खपड़ैलों की सिटकियां मिलने लगीं; इधर-उधर गिरी हुई दीवारें और मिट्टी के ढूह प्रत्यक्ष होने लगे। हम लोगों ने जाना कि अब यहीं से खंडहर का आरम्भ है। दीवारों की मिट्टी से स्थान क्रमशः ऊंचा होता जाता था, जिस पर से होकर हम लोग निर्भय जा रहे थे। इस निर्भयता के लिए हम लोग चन्द्रमा के प्रकाश के भी अनुगृहीत हैं। सम्मुख ही एक देवमन्दिर पर दृष्टि जा पड़ी जिसका कुछ भाग तो नष्ट हो गया था, किन्तु शेष प्रस्तरविनिर्मित होने के कारण अब तक क्रूर काल के आक्रमण को सहन करता आया था। मन्दिर का द्वार ज्यों का त्यों खड़ा था। किवाड़ सट गये थे। भीतर भगवान् भवानीपति बैठे निर्जन कैलाश का आनन्द ले रहे थे, द्वार पर उनका नन्दी भी बैठा था। मैं तो प्रणाम करके वहां से हटा; किन्तु देखा तो हमारे मित्र बड़े ध्यान से खड़े हो उस मन्दिर की ओर देख रहे हैं और मन ही मन कुछ सोच रहे हैं। मैंने मार्ग में भी कई बेर लक्ष्य किया था कि वे कभी-कभी ठिठक जाते और किसी वस्तु को बड़ी स्थिर दृष्टि से देखने लगते। मैं खड़ा हो गया और पुकारकर मैंने कहा, "कहो मित्र! क्या है ? क्या देख रहे हो ?"

मेरी बोली सुनते ही वे झट मेरे पास दौड़ आए और कहा, "कुछ नहीं, यों ही मैं मन्दिर देखने लग गया था।" मैंने फिर तो कुछ न पूछा, किन्तु अपने मित्र के मुख की ओर देखता जाता था, जिस पर कि विस्मय-युक्त एक अद्‌भुत-भाव लक्षित होता था। इस समय खंडहर के मध्य भाग में हम लोग खड़े थे। मेरा हृदय इस स्थान को इस

अवस्था में देख विदीर्ण होने लगा। प्रत्येक वस्तु से उदासी बरस रही थी; इस संसार की अनित्यता की सूचना मिल रही थी। इस करुणोत्पादक दृश्य का प्रभाव मेरे हृदय पर किस सीमा तक हुआ, शब्दों द्वारा अनुभव करना असम्भव है।

कहीं सड़े हुए किवाड़ भूमि पर पड़े प्रचण्ड काल को साष्टांग दण्डवत कर रहे हैं। जिन घरों में किसी अपरिचित की परछाईं पड़ने से कुल की मर्यादा भंग होती थी, वे भीतर से बाहर तक खुले पड़े हैं। रंग-बिरंगी चूड़ियों के टुकड़े इधर-उधर पड़े काल की महिमा गा रहे हैं। मैंने इनमें से एक को हाथ में उठाया, उठाते ही यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि "वे कोमल हाथ कहाँ हैं जो इन्हें धारण करते थे?"

हा! यही स्थान किसी समय नर-नारियों के आमोद-प्रमोद से पूर्ण रहा होगा और बालकों के कल्लोल की ध्वनि चारों ओर से आती रही होगी। वही आज कराल काल के कठोर दांतों के तले पिसकर चकनाचूर हो गया है। तृणों से आच्छादित गिरी हुई दीवारें, मिट्टी और ईंटों के ढूह, टूटे-फूटे चौकठे और किवाड़ इधर-उधर पड़े एक स्वर से मानों पुकार के कह रहे थे—"दिनन को फेर होत, मेरु होत माटी को"; प्रत्येक पार्श्व से मानों यही ध्वनि आ रही थी। मेरे हृदय में करुणा का एक समुद्र उमड़ा जिसमें मेरे विचार सब मग्न होने लगे।

मैं एक स्वच्छ शिला पर, जिसका कुछ भाग तो पृथ्वी-तल में धंसा था, और शेषांक बाहर था, बैठ गया। मेरे मित्र भी आकर मेरे पास बैठे। मैं तो बैठे-बैठे काल चक्र की गति पर विचार करने लगा; मेरे मित्र भी किसी विचार ही में डूबे थे; किन्तु मैं नहीं कह सकता कि वह क्या था। यह सुन्दर स्थान इस शोचनीय और पतित दशा को क्योंकर प्राप्त हुआ, मेरे चित्त में तो यही प्रश्न बार-बार उठने लगा; किन्तु उसका सन्तोषदायक उत्तर प्रदान करने वाला वहां कौन था? अनुमान ने यथासाध्य प्रयत्न किया, परन्तु कुछ फल न हुआ। माथा घूमने लगा। न जाने कितने और किस-किस प्रकार के विचार मेरे मस्तिष्क से होकर दौड़ गए।

हम लोग अधिक विलम्ब तक इस अवस्था में न रहने पाए। यह क्या? मधुसूदन! यह कौन-सा दृश्य है? जो कुछ देखा उससे अवाक रह गया! कुछ दूर पर एक श्वेत वस्तु इसी खंडहर की ओर आती देख पड़ी! मुझे रोमांच हो आया; शरीर कांपने लगा। मने अपने मित्र को उस ओर आकर्षित किया और उंगली उठा के दिखाया। परन्तु कहीं कुछ न देख पड़ा; मैं स्थापित मूर्त्ति की भांति बैठा रहा। पुनः वही दृश्य!! अबकी बार ज्योत्स्नालोक में स्पष्टरूप से हम लोगों ने देखा कि एक श्वेत परिच्छद-धारिणी स्त्री एक जल का पात्र लिए खंडहर के एक पार्श्व से होकर दूसरी ओर वेग से निकल गई और उन्हीं खंडहरों के बीच फिर न जाने कहां अन्तर्धान हो गई। इस अदृष्ट-पूर्व व्यापार को देख मेरे मस्तक में पसीना आ गया और कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होने लगे। विधाता! तेरी सृष्टि में न जाने कितनी अद्भुत-अद्भुत वस्तु मनुष्य की सूक्ष्म विचार दृष्टि से वंचित पड़ी हैं। यद्यपि मैंने इस स्थान-विशेष के सम्बन्ध में अनेक भयानक वार्ताएं सुन रक्खी थीं, किन्तु मेरे हृदय पर भय का विशेष संचार न हुआ। हम लोगों को प्रेतों पर भी इतना दृढ़ विश्वास न था; नहीं तो हम दोनों का एक क्षण भी उस स्थान पर ठहरना दुष्कर हो जाता। रात्रि भी अधिक व्यतीत होती जाती थी। हम दोनों को अब यह चिन्ता हुई कि यह स्त्री कौन है? इसका उचित परिशोध अवश्य लगाना चाहिए।

हम दोनों अपने स्थान से उठे, और जिस ओर यह स्त्री जाती हुई देख पड़ी थी उसी ओर चले। अपने चारों ओर प्रत्येक स्थान को भली प्रकार देखते, हम लोग गिरे हुए मकानों के भीतर जा जा के श्रृगालों के स्वच्छन्द विहार में बाधा डालने लगे। अभी तक तो कुछ ज्ञात न हुआ। यह बात तो हम लोगों के मन में निश्चय हो गई थी कि हो न हो वह स्त्री खंडहर के किसी गुप्त भाग में गई है। गिरी हुई दीवारों की मिट्टी और ईंटों के ढेर से इस समय हम लोग परिवृत्त थे; बाह्य जगत् की कोई वस्तु दृष्टि के अन्तर्गत न थी। हम लोगों को जान पड़ता था कि किसी दूसरे संसार में खड़े हैं। वास्तव में खंडहर के एक भयानक भाग में इस समय हम लोग खड़े थे। सामने एक बड़ी ईंटों की दीवार देख पड़ी जो औरों की अपेक्षा अच्छी दशा में थी। इसमें एक खुला हुआ द्वार था। इसी द्वार से हम दोनों ने इसमें प्रवेश किया। भीतर एक विस्तृत आंगन था जिसमें बेर और बबूल के पेड़ स्वच्छन्दतापूर्वक खड़े उस स्थान को मनुष्य-जाति-सम्बन्ध

से मुक्त सूचित करते थे। इसमें पैर धरते ही मेरे मित्र की दशा कुछ और हो गई और वे चट बोल उठे "मित्र ! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जैसे मैंने इस स्थान को और कभी देखा हो, यही नहीं कह सकता कब। प्रत्येक वस्तु यहां की पूर्व परिचित-सी जान पड़ती है।" मैं अपने मित्र की ओर ताकने लगा। उन्होंने आगे कुछ न कहा। मेरा चित्त इस स्थान के अनुसन्धान करने को मुझे बाध्य करने लगा। इधर-उधर देखा तो एक ओर मिट्टी पड़ते-पड़ते दीवार की ऊंचाई के अर्द्धभाग तक वह पहुंच गई थी। इस पर से होकर हम दोनों दीवार पर चढ़ गए। दीवार के नीचे दूसरे किनारे में चतुर्दिक-वेष्टित एक कोठरी दिखाई दी; मैं इसमें उतरने का यत्न करने लगा। बड़ी सावधानी से एक उभड़ी हुई ईंट पर पैर रखकर हम दोनों नीचे उत्तर गए। यह कोठरी ऊपर से बिलकुल खुली थी, इसलिए चन्द्रमा का प्रकाश इसमें बेरोक-टोक आ रहा था। कोठरी की दाहिनी ओर एक द्वार दिखाई दिया, जिसमें एक जीर्ण किवाड़ लगा हुआ था। हम लोगों ने निकट जाकर किवाड़ों को पीछे की ओर धीरे से ढकेला तो जान पड़ा कि वे भीतर से बन्द हैं।

मेरे तो पैर काँपने लगे। पुनः साहस को धारण कर हम लोगों ने किवाड़ के छोटे-छोटे रन्ध्रों से झांका तो एक प्रशस्त कोठरी देख पड़ी। एक कोने में मन्द-मन्द एक प्रदीप जल रहा था जिसका प्रकाश द्वार तक न पहुँचता था। यदि प्रदीप उसमें न होता तो अन्धकार के अतिरिक्त हमलोग और कुछ न देख पाते।

हमलोग कुछ काल तक स्थिर दृष्टि से उसी ओर देखते रहे। इतने में एक स्त्री की आकृति देख पड़ी, जो हाथ में कई छोटे पात्र लिए उस कोठरी के प्रकाशित भाग में आई ! 'अब तो किसी प्रकार का सन्देह न रहा। एक बेर इच्छा हुई कि किवाड़ खटखटायें; किन्तु कई बातों का विचार करके हमलोग ठहर गए। जिस प्रकार से हम-लोग कोठरी में आए थे, धीरे-धीरे उसी प्रकार निःशब्द दीवार पर से होकर फिर आँगन में आए। मेरे मित्र ने कहा—"इसका शोध अवश्य लगाओ कि यह स्त्री कौन है।" अन्त में हम दोनों आड़ में, इस आशा से कि कदाचित् वह फिर बाहर निकले, बैठ रहे। पौन घंटे के लगभग हमलोग इसी प्रकार बैठे रहे। इतने में वही श्वेतवसन-धारिणी स्त्री आंगन में सहसा आकर खड़ी हो गई। हम-लोगों को यह देखने का समय न मिला कि वह किस ओर से आई !

उसका अपूर्व सौन्दर्य देखकर हम लोग स्तम्भित व चकित रह गए। चन्द्रिका में उसके सर्वांग की सुन्दरता स्पष्ट जान पड़ती थी। गौर वर्ण, शरीर किंचित् क्षीण और आभूषणों से सर्वथा रहित; मुख उसका, यद्यपि उसपर उदासीनता और शोक का स्थायी निवास लक्षित होता था एक अलौकिक प्रशान्त कान्ति से देदीप्यमान हो रहा था। सौम्यता उसके अंग-अंग से प्रदर्शित होती थी। वह साक्षात देवी जान पड़ती थी।

कुछ काल तक किंकर्तव्यविमूढ़ होकर स्तब्ध लोचनों से उसी ओर हमलोग देखते रहे; अन्त में हमने अपने को सम्भाला और इसी अवसर को अपने कार्योपयुक्त विचारा। हमलोग अपने स्थान पर से उठे और तुरन्त उस देवीरूपिणी के सम्मुख हुए। वह देखते ही वेग से पीछे हटी। मेरे मित्र ने गिड़गिड़ा के कहा, "देवि ! ढिठाई क्षमा करो। मेरे भ्रमों को निवारण करो।" वह स्त्री क्षण भर तक चुप रही, फिर स्निग्ध और गम्भीर स्वर से बोली, "तुम कौन हो और क्यों मुझे व्यर्थ कष्ट देते हो?" इसका उत्तर ही क्या था? मेरे मित्र ने फिर विनीत भाव से कहा, "देवि ! मुझे बड़ा कौतूहल है—दया करके यहाँ का सब रहस्य कहो।"

इसपर उसने उदास स्वर से कहा, "तुम हमारा परिचय लेके क्या करोगे ? इतना जान लो कि मेरे समान अभा-गिनी इस समय इस पृथ्वी मण्डल में कोई नहीं है।"

मेरे मित्र से न रहा गया; हाथ जोड़कर उन्होंने फिर निवेदन किया, "देवि ! अपने वृत्तान्त से मुझे परिचित करो। इसी हेतु हमलोगों ने इतना साहस किया है। मैं भी तुम्हारे ही समान दुखिया हूँ। मेरा इस संसार में कोई नहीं है।" मैं अपने मित्र का यह भाव देखकर चकित रह गया।

स्त्री ने करुणस्वर से कहा, "तुम मेरे नेत्रों के सम्मुख भूला-भुलाया मेरा दुख फिर उपस्थित करने का आग्रह कर रहे हो। अच्छा बैठो।"

मेरे मित्र निकट के एक पत्थर पर बैठ गये। मैं भी

उन्हीं के पास जा बैठा। कुछ काल तक सब लोग चुप रहे, अन्त में वह स्त्री बोली,

"इसके प्रथम कि मैं अपने वृत्तान्त से तुम्हें परिचित करूं, तुम्हें शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम्हारे सिवाय यह रहस्य संसार में और किसी के कानों तक न पहुँचे, नहीं तो मेरा इस स्थान पर रहना दुष्कर हो जायगा और आत्महत्या ही मेरे लिए एक मात्र उपाय शेष रह जायगा।"

हमलोगों के नेत्र गीले हो आए। मेरे मित्र ने कहा, "देवि! मुझसे तुम किसी प्रकार का भय न करो; ईश्वर मेरा साक्षी है।"

स्त्री ने तब इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

"यह खंडहर जो तुम देखते हो, आज से १० वर्ष पूर्व इक सुन्दर ग्राम था। अधिकांश ब्राह्मण क्षत्रियों की इसमें बस्ती थी। यह घर जिसमें हमलोग बैठे हैं, चन्द्रशेखर मिश्र नामी एक प्रतिष्ठित और कुलीन ब्राह्मण का निवास-स्थान था। घर में उनकी स्त्री और एक पुत्र था, इस पुत्र के सिवाय उन्हें और कोई सन्तान न थी। आज ११ वर्ष हुए कि मेरा विवाह इसी चन्द्रशेखर मिश्र के पुत्र के साथ हुआ था।"

इतना सुनते ही मेरे मित्र सहसा चौंक पड़े। "हे परमेश्वर यह सब स्वप्न है या प्रत्यक्ष?" ये शब्द उनके मुख से निकले ही थे कि उनकी दशा विचित्र हो गई। उन्होंने अपने को बहुत सम्भाला—और फिर से सम्भलकर बैठे। वह स्त्री उनका यह भाव देखकर विस्मित हुई और उसने पूछा, "क्यों, क्या है?"

मेरे मित्र ने विनीत भाव से उत्तर दिया, "कुछ नहीं यों ही मुझे एक बात का स्मरण आया। कृपा करके आगे कहो।" स्त्री ने फिर कहना आरम्भ किया—

"मेरे पिता का घर काशी में... मुहल्ले में था। विवाह के एक वर्ष पश्चात् ही इस ग्राम में एक भयानक दुर्घटना उपस्थित हुई। यहीं से मेरे दुर्दमनीय दुःख का जन्म हुआ। सन्ध्या को सब ग्रामीण अपने-अपने कार्य से निश्चिन्त होकर अपने अपने घरों को लौटे। बालकों का कोलाहल बन्द हुआ। निद्रादेवी ने ग्रामीणों के चिन्ता-शून्य हृदयों में अपना डेरा जमाया। आधी रात से अधिक बीत चुकी थी; कुत्ते भी थोड़ी देर तक भूंककर अन्त में चुप हो रहे। प्रकृति निस्तब्ध हुई; सहसा ग्राम में कोलाहल मचा और धमाके के कई शब्द हुए। लोग आंखें मींजते उठे। चारपाई के नीचे पैर देते हैं तो घुटने भर पानी में खड़े!! कोलाहल सुनकर बच्चे भी जगे। एक दूसरे का नाम ले लेकर लोग चिल्लाने लगे। अपने अपने घरों में से लोग बाहर निकल कर खड़े हुए। भगवती जाह्नवी को द्वार पर बहते हुए पाया! भयानक विपत्ति! कोई उपाय नहीं। जल का वेग क्रमशः अधिक बढ़ने लगा। पैर कठिनता से ठहरते थे। जिधर दृष्टि उठाकर देखा जल ही जल दिखाई दिया। एक एक करके सब सामग्रियां बहने लगीं। संयोग-वश एक नाव कुछ दूर पर आती देख पड़ी। आशा! आशा!! आशा!!!

नौका आई। लोग टूट पड़े और बलपूर्वक चढ़ने का यत्न करने लगे। मल्लाहों ने भारी विपत्ति सम्मुख देखी, नाव पर अधिक बोझ होने के भय से उन्होंने तुरन्त अपनी नाव बढ़ा दी। बहुत से लोग रह गये। नौका पवनगति से गमन करने लगी। नौका दूसरे किनारे पर लगी। लोग उतरे। चन्द्रशेखर मिश्र भी नाव पर से उतरे और अपने पुत्र का नाम लेके पुकारा। कोई उत्तर न मिला। उन्होंने अपने साथ ही उसे नाव पर चढ़ाया था। किन्तु भीड़-भाड़ नाव पर अधिक होने के कारण वह उनसे पृथक् हो गया था; मिश्रजी बहुत घबड़ाए और तुरन्त नाव लेकर लौटे। देखा, बहुत से लोग रह गये थे; उनसे पूछ-ताछ किया। किसी ने कुछ पता न दिया। निराशा भयंकर रूप धारण करके उनके सामने उपस्थित हुई।

सन्ध्या का समय था; मेरे पिता दरवाजे पर बैठे थे। सहसा मिश्रजी घबड़ाए हुए आते देख पड़े। उन्होंने आकर आद्योपान्त पूर्व्वोल्लिखित घटना कह सुनाई, और तुरन्त उन्मत्त की भांति वहां से चल दिये। लोग पुकारते ही रह गये; वे एक क्षण भी वहां न ठहरे। तब से फिर कभी वे दिखाई न दिये। ईश्वर जाने वे कहाँ गये। मेरे पिता भी दत्तचित्त होकर अनुसन्धान करने लगे। उन्होंने सुना कि ग्राम के बहुत से लोग नाव पर चढ़-चढ़कर इधर-उधर भाग गए हैं। इसलिए उन्हें आशा थी। इस प्रकार ढूंढ़ते-ढांढ़ते कई मास व्यतीत हो गए। अब तक वे समाचार की प्रतीक्षा में थे और उन्हें आशा थी; किन्तु अब उन्हें भी

चिन्ता हुई। चन्द्रशेखर मिश्र का भी तब से कहीं कुछ समाचार न मिला। जहां-जहां मिश्रजी का सम्बन्ध था मेरे पिता स्वयं गए; किन्तु चारों ओर से निराश लौटे; किसी का कुछ अनुसन्धान न लगा। एक वर्ष बीता, दो वर्ष बीते, तीसरा वर्ष आरम्भ हुआ। पिता बहुत इधर-उधर दौड़े, अन्त में ईश्वर और भाग्य के ऊपर छोड़कर बैठ रहे। तीसरा वर्ष भी व्यतीत हो गया।

मेरी अवस्था उस समय १४ वर्ष की हो चुकी थी; अब तक तो मैं निर्बोध बालिका थी। अब क्रमशः मुझे अपनी वास्तविक दशा का ज्ञान होने लगा। मेरा समय भी अहर्निश इसी चिन्ता में अब व्यतीत होने लगा। शरीर दिन पर दिन क्षीण होने लगा। मेरे देवतुल्य पिता ने यह बात जानी। वे सदा मेरे दुख भुलाने का यत्न करते रहते थे। अपने पास बैठा कर रामायण आदि की कथा सुनाया करते थे। पिता अब वृद्ध होने लगे; दिवारात्रि की चिन्ता ने उन्हें और भी वृद्ध बना दिया। घर के समस्त कार्य्य-सम्पादन का भार मेरे बड़े भाई के ऊपर पड़ा। उनकी स्त्री का स्वभाव बड़ा क्रूर था; कुछ दिन तक तो किसी प्रकार चला। अन्त में वह मुझसे डाह करने लगी और कष्ट देना प्रारम्भ किया। मैं चुपचाप सब सहन करती थी। धीरे धीरे आश्वासवाक्य के स्थान पर वह तीक्ष्ण वचनों से मेरे चित्त अधिक दुखाने लगी। यदि कभी मैं अपने भाई से निवेदन करती तो वे भी कुछ न बोलते; आनाकानी कर जाते। और मेरे पिता की, वृद्धावस्था के कारण, कुछ चल नहीं सकती थी। मेरे दुःख का समझने वाला वहाँ कोई नहीं देख पड़ता था। मेरी माता का पहिले ही परलोकवास हो चुका था। मुझे अपनी दशा पर बड़ा दुख हुआ। हा! मेरा स्वामी यदि इस समय होता तो क्या मेरी यही दशा होती? पिता के घर क्या इन्हीं वचनों द्वारा मेरा सत्कार किया जाता। यही सब विचार करके मेरा हृदय फटने लगता था। अब क्रमशः मेरा हृदय मेघाच्छन्न होने लगा। मुझे संसार शून्य दिखायी देने लगा। एकान्त में बैठकर अपनी अवस्था पर अश्रुवर्षण करती। उसमें भी यह भय लगा रहता कि कहीं भौजाई न पहुंच जाय। एक दिन उसने मुझे इसी अवस्था में पाया तो तुरन्त व्यंग वचनों द्वारा आश्वासन देने लगी। मेरा शोकार्त्त हृदय अग्निशिखा की भांति प्रज्वलित हो उठा; किन्तु मौनावलम्बन के सिवाय अन्य उपाय ही क्या था? दिन दिन मुझे यह दुःख असह्य होने लगा। एक रात्रि को मैं उठी, किसी से कुछ न कहा, और सूर्योदय के प्रथम ही अपने पिता का गृह मैंने परित्याग किया।

"म अब यह नहीं कह सकती कि उस समय मेरा क्या विचार था? मुझे एक बेर अपने पति के स्थान को देखने की लालसा हुई। दुःख और शोक से मेरी दशा उन्मत्त की सी हो गई थी। संसार में मैंने दृष्टि उठा के देखा तो मुझे और कुछ न दिखलाई दिया; केवल चारों ओर दुःख! सैकड़ों कठिनाइयां झेलकर अन्त में मैं इस स्थान तक आ पहुंची। उस समय मेरी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। मैंने इस स्थान को उस समय भी प्रायः इसी दशा में पाया था। यहां आने पर मुझे कई चिह्न ऐसे मिले जिनसे मुझे यह निश्चय हो गया कि चन्द्रशेखर मिश्र का घर यही है। इस स्थान को देखकर मेरे आर्त्त हृदय पर बड़ा कठोर आघात पहुँचा।"

इतना कहते-कहते हृदय के आवेग ने शब्दों को उसके हृदय ही में बन्दी कर रक्खा; बाहर प्रगट होने न दिया। क्षणेक पर्यन्त वह चुप रही; सिर नीचा किये भूमि की ओर देखती रही। इधर मेरे मित्र की दशा कुछ और ही हो रही थी; लिखित चित्र की भांति बैठे वे इकटक ताक रहे थे; इन्द्रियां अपना कार्य उस समय भूल गई थीं। स्त्री ने फिर कहना आरम्भ किया—

"इस स्थान को देख मेरा चित्त बहुत दग्ध हुआ। हा! यदि ईश्वर चाहता तो किसी दिन मैं इसी गृह की स्वामिनी होती। आज ईश्वर ने मुझको उसे इस अवस्था में दिखलाया। उसके आगे किसका वश है? अनुसन्धान करने पर मुझे दो कोठरियां मिलीं जो सर्वप्रकार से रक्षित और मनुष्य की दृष्टि के दुर्भेद्य थीं। लगभग चारों ओर मिट्टी पड़ जाने के कारण किसी को उनकी स्थिति का सन्देह नहीं हो सकता था। मुझे बहुत-सी सामग्रियां भी इनमें प्राप्त हुईं जो मेरी तुच्छ आवश्यकतानुसार बहुत थीं। मुझे यह निर्जन स्थान अपने पिता के कष्टागार से प्रियतर प्रतीत हुआ। यहीं मेरे पति के बाल्यावस्था के दिन व्यतीत हुए थे। यही स्थान मुझे प्रिय है। यहीं मैं अपने दुःखमय जीवन का शेष भाग उसी करुणालय जगदीश्वर की, जिसने मुझे इस अवस्था में डाला, आराधना में बिताऊंगी। यही विचार मैंने स्थिर किया। ईश्वर को मैंने धन्यवाद दिया जिसने

ऐसा उपयुक्त स्थान मेरे लिए ढूंढ़कर निकाला। कदाचित् तुम पछोगे कि इस अभागिनी ने अपने लिए इस प्रकार का जीवन क्यों उपयुक्त विचारा? तो उसका उत्तर है कि यह दुष्ट संसार भांति भांति की वासनाओं से पूर्ण है, जो मनुष्य को उसके सत्य पथ से विचलित कर देती हैं, दुष्ट और कुमार्गी लोगों के अत्याचार से वंचित रहना भी कठिन कार्य है।"

इतना कह के वह स्त्री ठहर गई। मेरे मित्र की ओर उसने देखा। वे कुछ मिनट तक काष्ठपुत्तलिका की भांति बैठे रहे; अन्त में एक लम्बी ठंढी सांस भर के उन्होंने कहा "ईश्वर! यह स्वप्न है या प्रत्यक्ष?" स्त्री उनका यह भाव देख-देखकर विस्मित हो रही थी। उसने पूछा, "क्यों! कैसा चित्त है?" मेरे मित्र ने अपने को सम्भाला और उत्तर दिया, "तुम्हारी कथा का प्रभाव मेरे चित्त पर बहुत हुआ है; कृपा करके आगे कहो।"

स्त्री ने कहा, "मुझे अब कुछ कहना शेष नहीं है। आज पांच वर्ष मुझे इस स्थान पर आए हुए; संसार में किसी मनुष्य को आज तक यह प्रगट नहीं हुआ। यहां प्रेतों के भय से कोई पदार्पण नहीं करता। इससे मुझे अपने को गोपन रखने में विशेष कठिनता नहीं पड़ती। संयोगवश रात्रि में किसी की दृष्टि यदि मुझपर पड़ी भी तो चुड़ैल के भ्रम से मेरे निकट तक आने का किसी को साहस न हुआ। यह आज प्रथम ऐसा संयोग उपस्थित हुआ है; तुम्हारे साहस को मैं सराहती हूं और प्रार्थना करती हूं कि तुम अपने शपथ पर दृढ़ रहोगे। संसार में अब मैं प्रगट होना नहीं चाहती; प्रकट होने से मेरी बड़ी दुर्दशा होगी। मैं यहीं अपने पति के स्थान पर अपना जीवन शेष करना चाहती हूँ। इस संसार में मैं अब बहुत दिन न रहूंगी।"

मैंने देखा मेरे मित्र का चित्त भीतर ही भीतर आकुल और संतप्त हो रहा था; हृदय का वेग रोककर उन्होंने प्रश्न किया, "क्यों! तुम्हें अपने पति का कुछ स्मरण है?"

स्त्री के नेत्रों से अनर्गल वारिधारा प्रवाहित हुई। बड़ी कठिनतापूर्वक उसने उत्तर दिया, "मैं उस समय बालिका थी। विवाह के समय मैंने उन्हें देखा था। वह मूर्ति अद्यापि मेरे हृदयमन्दिर में विद्यमान है; प्रचण्ड काल भी उसको वहां से हटाने में असमर्थ है।"

मेरे मित्र ने कहा, "देवि! तुमने बहुत कुछ रहस्य प्रगट किया; जो कुछ शेष है उसका वर्णन कर अब मैं इस कथा की पूर्त्ति करता हूँ।"

स्त्री विस्मयोत्फुल्ल लोचनों से मेरे मित्र की ओर निहारने लगी। मैं भी आश्चर्य से उन्हीं की ओर देखने लगा। उन्होंने कहना आरम्भ किया——

"इस आख्यायिका में यही ज्ञात होना शेष है कि चन्द्रशेखर मिश्र के पुत्र की क्या दशा हुई। चन्द्रशेखर मिश्र और उनकी पत्नी क्या हुए। सुनो, नाव पर मिश्रजी ने अपने पुत्र को अपने साथ ही बैठाया। नाव पर भीड़ अधिक हो जाने के कारण वह उनसे पृथक् हो गया। उन्होंने समझा कि वह नाव ही पर है; कोई चिन्ता नहीं। इधर मनुष्यों की धक्का-मुक्की से वह लड़का नाव पर से नीचे जा रहा। ठीक उसी समय मल्लाह ने नाव खोल दी। उसने कई बेर अपने पिता को पुकारा; किन्तु लोगों के कोलाहल में उन्हें कुछ सुनाई न दिया। नाव चली गई। बालक वहीं खड़ा रह गया। और लोग किसी प्रकार अपना-अपना प्राण लेके इधर-उधर भागे। नीचे भयानक जलप्रवाह; ऊपर अनन्त आकाश। लड़के ने एक छप्पर को बहते हुए अपनी ओर आते देखा; तुरन्त वह उसी पर बैठ गया। इतने में जल का एक बहुत ऊंचा प्रबल झोंका आया। छप्पर लड़के सहित शीघ्र गति से बहने लगा। वह चुपचाप मूर्तिवत् उसी पर बैठा रहा। उसे यह ध्यान नहीं कि इस प्रकार कै दिन तक वह बहता गया। वह भय और दुविधा से संज्ञाहीन हो गया था। संयोगवश एक व्यापारी की नाव जिस पर रूई लदी थी पूरब की ओर जा रही थी। नौका का स्वामी भी बजरे ही पर था। उसकी दृष्टि उस लड़के पर पड़ी। वह उसे नाव पर ले गया। लड़के की अवस्था उस समय मृतप्राय थी। अनेक यत्न के उपरान्त वह होश में लाया गया। उस सज्जन ने लड़के की नाव पर बड़ी सेवा की। नौका बराबर चलती रही; बीच में कहीं न रुकी; कई दिनों के उपरान्त वह कलकत्ते पहुंची।

वह बंगाली सज्जन उस लड़के को अपने घर पर ले गया और उसे उसने अपने परिवार में सम्मिलित किया। बालक ने अपने माता-पिता के देखने की इच्छा प्रगट की। उसने उसे बहुत समझाया और शीघ्र अनुसन्धान करने का वचन दिया। लड़का चुप हो रहा।

इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गये। क्रमशः वह

अपने पास के लोगों में हिल-मिल गया। बंगाली महाशय के एक पुत्र था—दोनों में भ्रातृ-स्नेह स्थापित हो गया। वह सज्जन उस लड़के के भावी हित की चेष्टा में तत्पर हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापित किये हुए एक अंगरेजी स्कूल में, अपने पुत्र के साथ-साथ उसे भी वह शिक्षा देने लगा। क्रमशः उसे अपने घर का ध्यान कम होने लगा। वह दत्तचित्त होकर शिक्षा में अपना सारा समय देने लगा। इसी प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये। उसके चित्त में अब अन्य प्रकार के विचारों ने निवास किया। अब पूर्व परिचित लोगों के ध्यान के लिए उसके मन में कम स्थान शेष रहा। मनुष्य का स्वभाव ही इस प्रकार का है। नौ वर्ष का समय निकल गया।

इसी बीच में एक बड़ी चित्ताकर्षक घटना उपस्थित हुई। वंगदेशी सज्जन के उस पुत्र का विवाह हुआ। चन्द्र-शेखर का पुत्र भी उस समय वहां उपस्थित था। उसने सब देखा; दीर्घकाल की निद्रा भंग हुई। सहसा उसे ध्यान हो आया "मेरा भी विवाह हुआ है; अवश्य हुआ है।" उसे अपने विवाह का बारम्बार ध्यान आने लगा। अपनी पाणिग्रहीता भार्या का भी उसे स्मरण हुआ। स्वदेश में लौटने को उसका चित्त आकुल होने लगा। रात्रि दिन इसी चिन्ता में व्यतीत होने लगे।"

हमारे कतिपय पाठक हम पर दोषारोपण करेंगे कि "हैं! न कभी साक्षात् हुआ, न वार्तालाप हुआ, न लम्बी-लम्बी कोर्टशिप हुई; यह प्रेम कैसा?" महाशय, रुष्ट न हूजिये। इस अदृष्ट प्रेम का धर्म और कर्त्तव्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ हृदय में ही हो सकती है। इसकी जड़ संसार के और प्रकार के प्रचलित प्रेमों से दृढ़तर और अधिक प्रशस्त है। आपको सन्तुष्ट करने को मैं इतना और कहे देता हूं कि इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधान मंत्री लार्ड बेकन्सफील्ड (Earl of Baconsfield) का भी यही मत था।

"युवक का चित्त अधिक डांवाडोल होने लगा। एक दिन उसने उस देवतुल्य सज्जन पुरुष से अपने चित्त की अवस्था प्रगट की और बहुत विनय के साथ विदा मांगी। आज्ञा पाकर उसने स्वदेश की ओर यात्रा की। देश में आने पर उसे विदित हुआ कि ग्राम में अब कोई नहीं है। उसने लोगों से अपने पिता-माता के विषय में पूछ-पाछ किया। कुछ लोगों ने कहा कि थोड़े दिन हुए वे दोनों इस नगर में थे; और अब वे तीर्थ-स्थानों में देशाटन कर रहे हैं। वह अपनी धर्मपत्नी के दर्शनों की अभिलाषा से सीधे काशी गया। वहां तुम्हारे पिता के घर का वह अनुसन्धान करने लगा। बहुत दिनों के पश्चात् तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता से उस से साक्षात् हुआ, जिससे तुम्हारे संसार से सहसा लोप हो जाने की बात ज्ञात हुई। वह निराश होकर संसार में घूमने लगा।"

इतना कहकर मेरे मित्र चुप हो रहे। इधर शेष भाग सुनने को हम लोगों का चित्त ऊब रहा था; आश्चर्य से उन्हीं की ओर हम ताक रहे थे। उन्होंने फिर उस स्त्री की ओर देखकर कहा, "कदाचित् तुम पूछोगी, कि इस समय अब वह कहां है? यह वही अभागा मनुष्य तुम्हारे सम्मुख बैठा है!"

हम दोनों के शरीर में बिजुली सी दौड़ गई; वह स्त्री भूमि पर गिरने लगी; मेरे मित्र ने दौड़कर उसको संभाला। वह किसी प्रकार उन्हीं के सहारे बैठी। कुछ क्षण के उप-रान्त उसने बहुत धीमे स्वर से मेरे मित्र से कहा, "अपना हाथ दिखाओ।"

उन्होंने चट अपना हाथ फैला दिया, जिसपर एक काला तिल दिखाई दिया। स्त्री कुछ काल तक उसी की ओर देखती रही; फिर मुख ढांपकर सिर नीचा करके बैठ रही। लज्जा का प्रवेश हुआ। क्योंकि यह एक हिन्दू रमणी का उसके पति के साथ प्रथम संयोग था।

आज इतने दिनों के उपरान्त मेरे मित्र का गुप्त-रहस्य प्रकाशित हुआ। उस रात्रि को मैं अपने मित्र का खंडहर में अतिथि रहा। सबेरा होते ही हम सब लोग प्रसन्नचित्त नगर में आये।

१९०३

❀ ❀ ❀

दुलाईवाली

एक वङ्ग-महिला

काशी जी के दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके एक मनुष्य बड़ी व्यग्रता के साथ गोदौलिया की तरफ आ रहा था। एक हाथ में एक मैली सी तौलिया में लपेटी हुई भीगी धोती और दूसरे में सुरती की गोलियों की कई डिबियाँ और सुँघनी की एक पुड़िया थी। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। गोदौलिया की बाईं तरफ जो गली है, उसके भीतर एक और गली में थोड़ी दूर पर, एक टूटे से पुराने मकान में वह जा घुसा। मकान के पहले खण्ड में बहुत अँधेरा था; पर ऊपर की जगह मनुष्य के वासोपयोगी थी। नवागत मनुष्य धड़धड़ाता हुआ ऊपर चढ़ गया। वहाँ एक कोठरी में उसने हाथ की चीजें रख दीं और, "सीता! सीता!" कहकर पुकारने लगा। "क्या है?" कहती हुई एक दस बरस की बालिका आ खड़ी हुई। तब उस पुरुष ने कहा, "सीता! जरा अपनी बहिन को बुला ला।" "अच्छा" कह कर सीता गई, और कुछ देर में एक नवीना स्त्री आकर उपस्थित हुई। उसे देखते ही पुरुष ने कहा,—"लो हम लोगों को तो आज ही जाना होगा।" इस बात को सुनकर स्त्री कुछ आश्चर्य्य युक्त होकर और झुँझला कर बोली—

"आज ही जाना होगा! यह क्यों? भला आज कैसे जाना हो सकेगा? ऐसा ही था तो सबेरे भैया से कह देते। तुम तो जानते हो कि मुँह से कह दिया; बस छुट्टी हुई। लड़की कभी बिदा की होती तो मालूम पड़ता। आज तो किसी सूरत जाना नहीं हो सकता।"

"तुम आज कहती हो! हमें तो अभी जाना है। बात यह है कि आज ही नवलकिशोर कलकत्ते से आ रहे हैं। आरे से अपनी नई बहू को भी साथ ला रहे हैं। सो उन्होंने हमें आज ही जाने के लिए इसरार किया है। हम सब लोग मोगलसराय से साथ ही इलाहाबाद चलेंगे। उनका तार मुझे घर से निकलते ही मिला। इसी से मैं झट नहा धोकर लौट आया। बस अब करना ही क्या है! कपड़ा वपड़ा जो कुछ हो बाँध बूँध कर, घंटे भर में खा पीकर, चली चलो। जब हम तुम्हें बिदा कराने आये ही हैं तब कल के बदले आज ही सही।"

"हाँ यह बात है। नवल जो चाहें करावें। क्या एक ही गाड़ी में न जाने से दोस्ती में बट्टा लग जायगा? अब तो किसी तरह रुकोगे नहीं, जरूर ही उनके साथ जाओगे। पर मेरे तो नाकों दम आ जायगी।"

"क्यों? किस बात से?"

"उनकी हँसी से और किससे! हँसी ठट्ठा भी राह से अच्छी लगती है। उनकी हँसी मुझे नहीं भाती। एक रोज मैं चौके में बैठी पूड़ियाँ काढ़ रही थी, कि इतने में न जाने कहाँ से आकर नवल चिल्लाने लगे, "ए बुआ! ए बुआ! देखो तुम्हारी बहू पूड़ियाँ खा रही है।" मैं तो मारे सरम के मर सी गई। हाँ भाभी जी ने बात उड़ा दी सही। वे बोलीं, "खाने दो, खाने पहनने के लिए तो आई ही है।" पर मुझे उनकी हँसी बहुत बुरी लगी।"

"बस इसी से तुम उनके साथ नहीं जाना चाहती? अच्छा चलो मैं नवल से कह दूँगा कि यह बेचारी कभी रोटी तक तो खाती ही नहीं, पूरी क्यों खाने लगी।"

इतना कहकर वंशीधर कोठरी के बाहर चले आये, और बोले, "मैं तुम्हारे भैया के पास जाता हूँ। तुम रो रुलाकर तैयार हो जाना।"

इतना सुनते ही जानकी देई की आँखें भर आईं। और असाढ़ सावन की ऐसी झड़ी लग गई।

(२)

वंशीधर इलाहाबाद के रहने वाले हैं। बनारस में ससुराल है। स्त्री को बिदा कराने आये हैं। ससुराल में एक साले, साली और सास के सिवा और कोई नहीं है। नवलकिशोर इनके दूर के नाते में ममेरे भाई हैं। पर दोनों से मित्रता का ख्याल अधिक है। दोनों में गहरी मित्रता है। दोनों एक जान दो कालिब हैं।

उसी दिन वंशीधर का जाना स्थिर हो गया। सीता, बहन के संग जाने के लिए रोने लगी। माँ रोती धोती लड़की की बिदा की सामग्री इकट्ठी करने लगी। जानकी-देई भी रोती ही रोती तैयार होने लगी। कोई चीज भूलने पर धीमी आवाज से माँ को याद भी दिलाती गई। एक बजने पर स्टेशन जाने का समय आया। अब गाड़ी या इक्का लाने कौन जाय? ससुराल वालों की अवस्था अब आगे की सी नहीं कि दो चार नौकर चाकर हर समय बने रहें। सीता के बाप के न रहने से काम बिगड़ गया है। पैसे वाले के यहाँ नौकर चाकरों से सिवा और भी दो चार खुशामदी घेरे रहते हैं। छूछे को कौन पूछे? एक कहारिन है; सो भी इस समय कहीं गई है। सालेराम की तबीयत अच्छी नहीं। वे हरघड़ी बिछौने से बातें करते हैं। तिस पर भी आप कहने लगे—"मैं ही धीरे-धीरे जाकर कोई सवारी ले आता हूँ। नजदीक तो है।" वंशी-धर बोले,—"नहीं, नहीं, तुम क्यों तकलीफ करोगे? मैं ही जाता हूँ।"

जाते जाते वंशीधर विचारने लगे कि इक्के की सवारी तो भले घर की स्त्रियों के बैठने लायक नहीं होती। क्योंकि एक तो उतने ऊँचे पर चढ़ना पड़ता है; दूसरे पराये पुरुष के संग एक साथ बैठना पड़ता है। मैं एक पालकी गाड़ी ही करलूं। उसमें सब तरह का आराम रहता है।" पर जब गाड़ी वालों ने डेढ़ रुपया किराया माँगा, तब, वंशीधर ने मनमें कहा—"चलो इक्काही सही। पहुँचने से काम। कुछ नवलकिशोर तो यहाँ से साथ हैं नहीं। इलाहाबाद में देखा जायगा।" वंशीधर इक्का ले आये, और जो कुछ असबाब था इक्के पर रख कर आप भी बैठ गये। जानकी देई बड़ी विकलता से रोती हुई इक्के पर जा बैठी। पर इस अस्थिर संसार में स्थिरता कहाँ? यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं। इक्का जैसे जैसे आगे बढ़ता गया, वैसे ही वैसे जानकी की रुलाई भी कम होती गई। सिकरौल के स्टेशन के पास पहुँचते पहुँचते जानकी अपनी आँखें अच्छी तरह पोंछ चुकी थी। दोनों चुपचाप चले जा रहे थे, कि अचानक वंशीधर की नजर अपनी धोती पर पड़ी; और "अरे एक बात तो हम भूल ही गये।" कह कर पछतासा उठे। इक्के वाले के कान बचाकर जानकी जी ने पूछा, "क्या हुआ? क्या कोई जरूरी चीज भूल आये?"

"नहीं, एक देशी धोती पहिनकर आना था; सो भूलकर बिलायती ही पहिन आये। नवल कट्टर स्वदेशी हुए हैं न? वे बंगालियों से भी बढ़ गये हैं। देखेंगे तो दो चार सुनाये बिना न रहेंगे। और, बात भी ठीक है। नाहक बिलायती चीजें मोल लेकर क्यों रुपये की बरबादी की जाय। देशी लेने से भी दाम लगेगा सही; पर रहेगा तो देश ही में।"

जानकी जी जरा भौंहें टेढ़ी करके बोलीं, "उँह धोती तो धोती; पहिनने से काम। क्या यह बुरी है?"

इतने में स्टेशन के कुलियों ने आ घेरा। वंशीधर एक कुली करके चले। इतने में इक्के वाले ने कहा, "इधर से टिकट लेते जाइए। पुल के उस पार तो ड्योढ़े दरजे का टिकट मिलता है।"

वंशीधर फिर कर बोले, "अगर मैं ड्योढ़े दरजे ही का टिकट लूँ तो?"

इक्के वाला चुप हो रहा। "इक्के की सवारी देखकर इसने ऐसा कहा"—यह कहते हुए वंशीधर आगे बढ़े। यथा समय रेल पर बैठकर वंशीधर राजघाट पार करके मुगलसराय पहुँचे। वहाँ पुल लाँघकर दूसरे प्लैटफार्म पर जा बैठे। आप नवल से मिलने की खुशी में प्लैटफार्म के इस छोर से उस छोर तक टहलते रहे। देखते देखते गाड़ी का धुआँ दिखलाई पड़ा। मुसाफिर अपनी अपनी गठरी सँभालने लगे। रेलदेवी भी अपनी चाल धीमी करती हुई गम्भीरता से आ खड़ी हुई। वंशीधर एकबार चलती गाड़ी ही में शुरू से अखीर तक देख गये। पर नवल का कहीं पता नहीं। वंशीधर फिर सब गाड़ियों को दोहरा गये, तेहरा गये, भीतर घुस घुस कर एक एक डिब्बे को देखा किन्तु नवल न मिले। अन्त को आप खिजला उठे, और सोचने लगे कि मुझे तो वैसी चिट्ठी लिखी, और आप न आया। मुझे अच्छा उल्लू बनाया। अच्छा जायँगे कहाँ? भेंट होने पर समझ लूँगा।" सबसे अधिक सोच तो इस बात का था कि जानकी सुनेगी तो ताने पर ताना मारेगी। पर अब सोचने का समय नहीं। रेल की बात ठहरी। वंशीधर झट गये और जानकी को लाकर जनानी गाड़ी में बिठाया। वह पूछने लगी, "नवल की बहू कहाँ है?" "वह नहीं आये, कोई अटकाव हो गया।" कहकर आप बगल

वाले कमरे में जा बैठे। टिकट तो डचोढ़े का था; पर डचोढ़े दरजे का कमरा कलकत्ते से आनेवाले मुसाफिरों से भरा था। इसलिए तीसरे दर्जे ही में बैठना पड़ा। जिस गाड़ी में वंशीधर बैठे थे उसके सब कमरों में मिलाकर कुल दस ही बाहर स्त्री पुरुष थे। समय पर गाड़ी छूटी। नवल की बातें, और न जाने क्या अगड़ बगड़, सोचते गाड़ी कई स्टेशन पास करके मिरजापुर पहुँची।

(३)

मिरजापुर में पेटराम की शिकायत शुरू हुई। उसने सुझाया कि इलाहाबाद पहुँचने में अभी देरी है। चलने के झंझट में अच्छी तरह उसकी पूजा किये बिना ही वंशीधर ने बनारस छोड़ा था। इसलिए आप झट प्लैटफार्म पर उतरे; और पानी के बम्बे से हाथ मुँह धोकर, एक खोंचे वाले से थोड़ी सी ताजी पूड़ियाँ और मिठाई लेकर, निराले में बैठ आपने उन्हें ठिकाने पहुँचाया। पीछे से जानकी की सुध आई। सोचा कि पहले पूछ लें, तब कुछ मोल लेंगे। क्योंकि स्त्रियाँ नटखट होती हैं। वे रेल पर खाना पसन्द नहीं करतीं। पूछने पर वही बात हुई। तब वंशीधर लौट कर अपने कमरे में आ बैठे। यदि वे चाहते तो इस समय डचोढ़े में बैठ जाते; क्योंकि अब भीड़ कम हो गई थी। पर उन्होंने कहा, थोड़ी देर के लिए कौन बखेड़ा करे।

वंशीधर अपने कमरे में बैठे तो दो एक मुसाफिर अधिक देख पड़े। आगे वालों में से एक उतर भी गया था। जो लोग थे सब तीसरे ही दर्जे के योग्य जान पड़ते थे; अधिक सभ्य कोई थे तो वंशीधर ही थे। उनके कमरे के पास वाले कमरे में एक भले घर की स्त्री बैठी थी। वह बेचारी सिर से पैर तक ओढ़े, सिर झुकाये, एक हाथ लंबा घूंघट काढ़े, कपड़े की गठरी सी बनी बैठी थी। वंशीधर ने सोचा इनके संग वाले भद्र पुरुष के आने पर उनके साथ बातचीत करके समय बितावेंगे। एक दो करके तीसरी घंटी बजी। तब वह स्त्री कुछ अकचका कर, थोड़ा सा मुँह खोल, जँगले से बाहर देखने लगी। ज्योंही गाड़ी छूटी, वह मानों काँप सी उठी। रेल का देना लेना तो हो ही गया था। अब उसको किसी की क्या परवा? वह अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगी। प्लैट फार्म पर भीड़ भी न थी। केवल दो चार आदमी रेल की अन्तिम बिदाई तक खड़े थे। जब तक स्टेशन दिखलाई दिया तब तक वह बेचारी बाहर ही देखती रही। फिर अस्पष्ट स्वर से रोने लगी। उस कमरे में तीन चार प्रौढ़ा ग्रामीण-स्त्रियाँ भी थीं। एक, जो उसके पास ही थी, कहने लगी,

"अरे इनका मनई तो नाहीं अईलेन। हो देखहो रोवल करथईन।"

दूसरी—"अरे दुसर गाड़ी में बैठा होइहैं।"

पहली—"दुर बौरही! ई जनानी गाड़ी थोड़े है"

दूसरी—"तऊ हो भल्तो कहू।" कहकर दूसरी भद्र महिला से पूछने लगी, "कौन गाँव उतरब बेटा! मीरजै-पूरा चढ़ी हऊ न।?" इसके जवाब में उसने जो कहा सो वह न सुन सकी। तब पहली बोली—

"हट हम पुँछिलान; हम कहा काहां ऊतरबू हो? आँय ईलाहाबास?"

दूसरी—"ईलाहाबास कौन गाँव हौ गोईंयाँ?"

पहली—"अरे नाहीं जनँलू? पैयाग जी, जाहाँ मनइ मकर नाहाए जाला।"

दूसरी—"भला पैयाग जी काहे न जानीथ; ले, कहैके नाहीं, तोहरे पच के धरम से चार दाँई नहाए चुकी हँइ। एसों हो सोमवारी, अउर गहन, दका, दका, लाग रहा तउन तोहरे काशी जी नाँहाय गइ रहे।"

पहली—"आवै जाय के तो सब अऊते जाता बटले बाटेन। फुन यह साइत तो बिचारो विपत में न पड़ल बाटिन। हे हम पचा हइ; राजघाट टिकस कटऊली; मोंगल के सरायँ उतरलीह; होद पुन; चढ़लीह।"

दूसरी—"ऐसे एक दाँइ हम आवत रहे। एक मिली औरो मोरे सँघे रही। द कौने टिसनीया पर उकर मलिकवा उतरे से कि जुरतँइहँ गड़िया खुली। अब भईया उः गरा फाड़ फाड़ नरियाय,—ए साहब गड़ीया खड़ीकर! ए साहेब गड़िया तँनी खड़ीकर।" भला गड़िया दहिनाती काहै के खड़ी होय?"

पहली—"उ मेहररूवा बड़ी उजबक रहल। भला केहू के चिल्लाए से रेलीऔ कहूँ खड़ी होला?"

इसकी इस बात पर कुल कमरे वाले हँस पड़े। अब जितने पुरुष स्त्रियाँ थीं, एक से एक अनोखी बातें कहकर अपने अपने तजरुबे बयान करने लगीं। बीच बीच में उस

अकेली अबला की स्थिति पर भी दुःख प्रकट करती जाती थीं।

तीसरी स्त्री बोली—"टीक्कसिया पल्ले बाय द नाँही। सहेबवा सुनि तो कलकत्ते ताँइ ले मसुलिया लेइ। अरे इहो तो नाँही कि दूर से आवत रहलेन, फरागत के बदे उतरलेन।

चौथी—"हम तो इनके सँघे के आदमी के देखबो न किहा गोइयाँ।"

तीसरी—"हम देखे रहली हो, मजेक टोपी दिहले रहलेन को!"

इस तरह उनकी बेसिर पैर की बातें सुनते सुनते वंशीधर ऊब उठे। तब वे उन स्त्रियों से कहने लगे—

"तुम तो नाहक उन्हें और भी डरा रही हो। जरूर इलाहाबाद तार गया होगा और दूसरी गाड़ी से वे भी वहाँ पहुँच जायँग। मैं भी इलाहाबाद ही जा रहा हूँ। मेरे सँग भी स्त्रियाँ हैं। जो ऐसा ही है तो दूसरी गाड़ी के आने तक मैं स्टेशन ही पर ठहरा रहूँगा। तुम लोगों में से यदि कोई प्रयाग उतरे तो थोड़ी देर के लिए स्टेशन पर ठहर जाना। इनको अकेले छोड़ देना उचित नहीं। यदि पता मालूम हो जायगा तो मैं इन्हें इनके ठहरने के स्थान पर भी पहुँचा दूँगा।"

वंशीधर की इन बातों से उन स्त्रियों की वाक्य-धारा दूसरी ओर बह चली,—"हाँ यह बात तो आप भल कही।" "नाहीं भइया! हम पचे काहिके केहुसे कुछ कही। अरे एक के एक करत न बाय तो दुनिया चलत कैसे बाय?" इत्यादि ज्ञान-गाथा होने लगी। कोई कोई तो उस बेचारी को सहारा मिलते देख खुश हुए और कोई कोई नाराज भी हुए। क्यों, सो मैं आप से नहीं बतला सकती। उस गाड़ी में जितने मनुष्य थे सभी ने इस विषय में कुछ न कुछ कह डाला था। पिछले कमरे में केवल एक स्त्री जो फरासीसी छींट की दुलाई ओढ़ अकेली बैठी थी, कुछ नहीं बोली। कभी कभी घूँघट के भीतर से एक आँख निकाल कर वंशीधर की ओर वह ताक देती थी और, सामना हो जाने पर, फिर मुँह फेर लेती थी। वंशीधर सोचने लगे कि "यह क्या बात है? देखने में तो यह भले घर की मालूम होती है, पर आचरण इसका अच्छा नहीं।"

गाड़ी इलाहाबाद के पास पहुँचने को हुई। वंशीधर उस स्त्री को धीरज दिलाकर आकाश-पाताल सोचने लगे। यदि तार में कोई खबर न आई होती तो दूसरी गाड़ी तक स्टेशन पर ही ठहरना पड़ेगा। और जो उससे भी कोई न आया तो क्या करूँगा? जो हो गाड़ी नैनी से छूट गई। अब साथ की उन अशिक्षिता स्त्रियों ने फिर मुँह खोला। "क भईया, जो केहु बिन टिक्कस के आवत होय तो ओकर का सजाय होला?" "अरे ओंका ई नाहीं चाहत रहा कि मेहरारू के तो बैठा दिहलेन, अउर अपुआ तऊन टिक्कस लेइ के चल दिहलेन।' किसी किसी आदमी ने तो यहाँ तक दौड़ मारी कि रात को वंशीधर इसके जेवर छीन कर रफूचक्कर हो जायँगे। उस गाड़ी में एक लाठी वाला भी था। उसने खुल्लम खुल्ला कहा—"का बाबू जी! कुछ हमरो साझ?" इसकी बात पर वंशीधर क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने उसे खूब धमकाया। उस समय तो वह चुप हो गया, पर यदि इलाहाबाद उतरता तो वंशीधर से बदला लिए बिना न रहता।

(४)

वंशीधर इलाहाबाद में उतरे। एक बुढ़िया को भी वहीं उतरना था। उससे उन्होंने कहा कि, "उनको भी अपने सँग उतार लो।" फिर उस बुढ़िया को उस स्त्री के पास बिठाकर आप जानकी को उतारने गये। जानकी से सब हाल कहने पर वह बोली—"अरे जाने भी दो; किस बखेड़े में पड़े हो।" पर वंशीधर ने न माना। जानकी को और उस भद्र महिला को एक ठिकाने बिठाकर आप स्टेशन मास्टर के पास गये। वंशीधर के जाते ही वह बुढ़िया, जिसे उन्होंने रखवाली के लिए छोड़ा था, किसी बहाने भग गई। स्टेशन मास्टर से पूछने पर मालूम हुआ कि कोई तार नहीं आया। अब तो वंशीधर बड़े असमंजस में पड़े। टिकट के लिए बखेड़ा होगा। क्योंकि वह स्त्री बे-टिकट है। लौटकर आये तो किसी को न पाया। "अरे ये सब कहाँ गईं?" यह कहकर चारों तरफ देखने लगे। कहीं पता नहीं। इस पर वंशीधर घबराये। "आज कैसी बुरी साइत में घर से निकले कि एक के बाद दूसरी आफत में फँसते चले आ रहे हैं।" इतने में अपने सामने उस दुलाई वाली को आते देखा। "तू ही उन स्त्रियों को कहीं ले गई है।" इतना कहना था कि दुलाई से मुँह खोलकर नवलकिशोर खिलखिला उठे।

"अरे यह क्या ? सब तुम्हारी ही करतूत है ! अब मैं समझ गया । कैसा गजब तुमने किया है ? ऐसी हँसी मुझे नहीं अच्छी लगती । मालूम होता है वह तुम्हारी ही बहू थी । अच्छा तो वे गईं कहाँ ?"

"वे लोग तो पालकी गाड़ी में बैठी हैं । तुम भी चलो ।"

"नहीं मैं सब हाल सुन लूँगा तब चलूंगा । हाँ यह तो कहो, तुम मिर्जापुर में कहाँ से आ निकले ?"

"मिरजापुर नहीं मैं तो कलकत्ते से, बल्कि मुगलसराय से, तुम्हारे साथ चला आ रहा हूँ । तुम जब मोगलसराय में मेरे लिए चक्कर लगाते थे तब मैं डचोढ़े दर्जे में ऊपर वाले बेंच पर लेटे तुम्हारा तमाशा देख रहा था । फिर मिरजापुर में जब तुम पेट के धंधे में लगे थे, मैं तुम्हारे पास से निकल गया पर तुमने न देखा । मैं तुम्हारी गाड़ी में जा बैठा । सोचा कि तुम्हारे आने पर प्रकट होऊँगा । फिर थोड़ा और देख लें, करते करते यहाँ तक नौबत पहुँची । "अच्छा अब चलो, जो हुआ उसे माफ करो !"

यह सुन वंशीधर प्रसन्न हो गये । दोनों मित्रों में बड़े प्रेम से बातचीत होने लगी । वंशीधर बोले—"मेरे ऊपर तो जो कुछ बीती सो बीती, पर वह बेचारी, जो तुम्हारे से गुनवान के संग पहली ही बार रेल से आ रही थी, बहुत ही तंग हुई । उसे तो तुमने नाहक रुलाया ।" वह बहुत ही डर गई थी ।

"नहीं जी ! डर किस बात का था ? हम, तुम, दोनों गाड़ी में न थे ?"

"हाँ पर, यदि मैं स्टेशन मास्टर से इत्तिला कर देता तो बखेड़ा खड़ा हो जाता न ?"

"अरे तो क्या मैं मर थोड़े ही गया था ! चार हाथ की दुलाई की बिसात ही कितनी ?"

इसी तरह बातचीत करते करते दोनों गाड़ी के पास आये । देखा तो दोनों मित्र-बधुओं में खूब हँसी हो रही है । जानकी कह रही थी—"अरे तुम जानों क्या ! इन लोगों की हँसी ऐसी ही होती है । हँसी में किसी के प्राण भी निकल जाँय तो भी इन्हें दया न आवे ।"

खैर दोनों मित्र अपनी अपनी घरवाली को लेकर राजी खुशी घर पहुँचे और मुझे भी उनकी यह राम-कहानी लिखने से छुट्टी मिली ।

१९०७

❀ ❀ ❀

आश्चर्य्यजनक घंटी

श्री सत्यदेव परिव्राजक

स्काट साहब अपने कमरे में हैरान बैठे थे । यह क्यों ? उनके सामने मेज के ऊपर एक जापानी फैशन की घंटी लटक रही थी । अभी थोड़ी देर हुई, कि उस घंटी से शब्द सुनाई दिया था । यद्यपि बात महज मामूली थी; परन्तु शब्द हुआ था बिना कारण के—बिना बजाये । इसी से साहब हैरत में थे । मन कहता था कि सचमुच शब्द सुना है, या कानों ने धोखा दिया है । धीरे धीरे उनको विश्वास होता जाता था कि शब्द सुनना उनका भ्रम है । भला घंटी भी कहीं आप ही आप टन टन कर सकती है ?

साहब के देखते ही देखते घंटी ने फिर राग अलापना शुरू किया—टन्न्न । उससे साफ सुहावनी आवाज इस प्रकार निकल रही थी जैसे कोई बड़े प्रेम से स्वर अलाप रहा हो । पहले बड़े जोर से गूँज सुनाई दी, फिर धीरे धीरे कम होती गई । स्काट साहब हक्के बक्के रह गये ।

कई मिनट तक वे घंटी के पास हैरान खड़े रहे । उनकी दृष्टि उस कलसी पर थी जिससे आप ही आप शब्द निकला था । किसने इसमें इस प्रकार शब्द किया ? क्या इसमें कोई जादू है ? क्या घंटी भी कभी आप ही आप बज सकती है ? यही प्रश्न उनके मन में हो रहे थे । वे चुपचाप कुछ देर तक खड़े रहे । शब्द के कारण को जानने की इच्छा और भी प्रबल हो उठी ।

"मैं समझता हूँ कि कानों को जरूर भ्रम हुआ है। परन्तु मैं तो इसकी ओर टकटकी लगाये देख रहा था। नहीं, भ्रम नहीं हुआ।"

अपने मन की घबराहट को कुछ काल के लिए दूरकर स्काट साहब उस शब्द का कारण फिर विचार करने लगे। उन्होंने बारी बारी से सब सम्भावनाओं को सामने रक्खा। क्या किसी कीड़े के घंटी के पास उड़ने से ऐसा शब्द हुआ? नहीं कोई कीड़ा या मधुमक्खी वहाँ मैंने नहीं देखी। मैं घंटी के बिलकुल पास था और उसकी ओर ध्यान से देखता था। वहाँ कोई कीड़ा पतंगा नहीं था।

क्या कोई चीज छत से घंटी के ऊपर गिरी जिससे यह शब्द हुआ? नहीं, यह बात भी नहीं। अगर गिरती तो मैं उसे जरूर देखता; और फिर वह कमरे के अन्दर ही होती। यहाँ एक कंकरी भी नहीं। साहब ने कई बार कमरे के इधर उधर, मेज के ऊपर नीचे, अच्छी तरह देखा। कहीं कोई चीज दिखाई न दी। यह उनका निज का कमरा था और कमरे का दरवाजा भी बन्द था।

साहब को खयाल आया कि शायद खिड़की की राह से हवा के झोंके से शब्द हुआ हो। क्योंकि खिड़की खुली थी। मगर जब उन्होंने खिड़की के पास जाकर देखा तो मालूम हुआ कि खिड़की के परदे गिरे हुए हैं और हवा ऐसी धीमी चलती है कि परदे हिलते तक नहीं। किसी ने खिड़की के बाहर से तो कुछ नहीं फेंका? यह भी संभव नहीं, क्योंकि खिड़की के सामने बारीक जाली है, जिससे किसी चीज का अन्दर आना असंभव है।

अब साहब के चेहरे पर फिर घबराहट छा गई। इसमें कोई शक नहीं कि कोई चीज इसके ऊपर नहीं गिरी। इसमें भी कोई शक नहीं कि बिना चोट के घंटी बोल नहीं सकती। भला फिर किसने चोट की?

"मैंने अपनी उम्र भर में ऐसी आश्चर्य-जनक बात नहीं देखी"—स्काट ने यह बात कई दफे कही।

कुछ ही देर बाद घंटी का शब्द फिर इनके कान में पहुँचा—टन्नन—एक, टन्नन—दो, टन्नन—तीन। स्काट अपनी कुरसी से डर कर उठ खड़े हुए; चेहरे का रंग पीला पड़ गया; सारा बदन बेंत की मानिन्द काँपने लगा। उन्होंने एक लम्बी साँस ली; इधर उधर देखा; फिर उस कमरे को छोड़कर बड़े कमरे में चले गये। वहाँ थोड़ी देर हैरान खड़े रहे; घड़ी में देखा; साढ़े नौ बजे थे। वे अपनी स्त्री के कमरे में चले गये।

स्काट। "प्रिये, तुमने वह जापानी घंटी कहाँ से खरीदी थी?"

मेरी। "ओह, वह घंटी! मैंने उसे, दो तीन महीने हुए, वेगनर नामक एक बूढ़े की दूकान में देखा था। बुड्ढा जरमनी का रहने वाला है। मुझे वह घंटी बहुत पसन्द आई। सो मैंने उस बूढ़े से उसकी कीमत पूछी। उसने चालीस रुपये बतलाये। मैंने रुपये देकर घंटी ले ली। पर आप यह क्यों पूछते हैं?"

स्काट। "मुझे मालूम होता है कि वह घंटी बहुत पुरानी है।"

मेरी। "मैं भी यही समझती हूँ। उसका रंग बहुत भला मालूम होता है। मैंने तो ऐसी घंटी और दूसरी नहीं देखी।"

स्काट। "क्या तुम उस घंटी के विषय में और भी कुछ जानती हो?"

मेरी। "नहीं। मुझे और कुछ मालूम नहीं"

स्काट। "कोई और खास बात?"

मेरी। "नहीं। पर आप इतनी खोज खाज करते क्यों हैं? मैंने तो उस घंटी में उसका सुहावना रंग और उसकी जापानी बनावट देख कर उसे खरीदा है।" स्काट साहब थोड़ी देर चुप रहे; फिर बोले।

"मुझे मालूम होता है कि वह साधारण घंटी नहीं है। उसकी कीमत भी बहुत अधिक मालूम होती है।"

मेरी। "मेरी राय ऐसी नहीं। मैंने तो उस की कीमत चालीस रुपये भी अधिक समझे थे।"

घंटी के विषय में बस इतनी ही बातचीत स्त्री और पुरुष के बीच हुई। परन्तु दूसरे दिन सबेरे ही स्काट उस बूढ़े वेगनर की दूकान पर पहुँचे। ज्योंहीं स्काट दुकान के अन्दर पहुँचे बढ़े जरमन ने दर्शन दिये।

स्काट। "क्या आपही का नाम वेगनर साहब है?"

बूढ़ा। "हाँ हुजूर मेरा ही नाम वेगनर है। कहिए क्या आज्ञा है?"

स्काट। "कुछ समय हुआ—शायद दो तीन महीने हुए—कि आपने एक जापानी घंटी बेची थी।"

"मुझे तो याद नहीं! मेरे पास कोई जापानी घंटी नहीं थी। मैंने कोई घंटी नहीं बेची"—बूढ़े राम ने कसमें खानी शुरू कीं।

स्काट। "तुम्हारा इनकार करना व्यर्थ है। तुम ने घंटी मेरी स्त्री के हाथ बेची है। भला क्यों झूठ बोलते हो ?"

बुड्ढे ने जरा जोर से कहा—"मैंने कोई घंटी नहीं बेची! मेरे पास कोई घंटी नहीं थी! कभी कोई औरत यहाँ नहीं आई! मैं नहीं चाहता कि कोई औरत यहाँ आवे। मुझे जापानी घंटी की बाबत कुछ भी मालूम नहीं। मेरे पास कोई घंटी नहीं थी।"

स्काट साहब बड़ी हैरत में हुए। बूढ़े ने बारबार वही नन्ना का पाठ पढ़ा। इन्हें घंटी का पता मालूम करना था। अब क्या करें? कोई चारा न था। लाचार घर लौटे। बुड्ढा भी इनके जाने की राह ताकता था। जब वे गाड़ी में सवार हो गये, बुड्ढे ने जाना कि बला टल गई।

एक दिन, शाम को, एक धनवान जापानी युवक इनके यहाँ आया। उसका नाम ओकू मातसूमी था। उसका पिता अमरीका में जापान की ओर से राजदूत रह चुका था। यह युवक टामी से मिलने आया था। टामी और यह एक ही कालिज में सहाध्यायी रह चुके थे। दोनों में बड़ी मित्रता थी।

इस समय एक अजीब दृश्य देखने में आया। जब जापानी की आँखें उस घंटी पर पड़ीं, वह विस्मय से अभिभूत हो गया। उसका शरीर काँपने लगा। वह आगे बढ़ा और उस मूर्ति को प्रणाम किया। अपने दायें और बायें हाथों से उसने कई प्रकार की क्रियायें कीं। उसके होंठों के हिलने से मालूम होता था कि वह कुछ पढ़ रहा है।

स्काट। "आप अभी क्या करते थे ?"

जापानी। "क्षमा कीजिए; यदि मैं बताऊँगा भी तो आप कुछ न समझेंगे। आज्ञा हो तो मैं इस घंटी को अच्छी तरह देख लूँ।"

स्काट। "शौक से।"

जापानी ने बड़ी सावधानी से घंटी की एक एक कलसी को देखा। उसने धीरे धीरे पेन्सिल मारी और प्रत्येक कलसी की आवाज कान लगाकर सुना। फिर उसने एक एक कलसी को हिला झुला कर देखा। ऊपर नीचे सब तरफ उसकी परीक्षा की। सब से बड़ी कलसी के भीतर उसे कोई बात बहुत ही अद्भुत मालूम हुई। खूब अच्छी तरह परीक्षा करके वह जापानी कुछ पीछे हट कर खड़ा हो गया। तब स्काट साहब ने उससे कहा।

स्काट। "मैं समझता हूँ कि आपने इस घंटी को पहले कभी देखा है ?"

जापानी। "कभी नहीं।"

स्काट। "भला यह तो बताइये कि आपने इसे प्रणाम क्यों किया ?"

जापानी ने कुछ जवाब न दिया। घंटी के ध्यान में वह मग्न था। उसने स्काट की बात सुनी ही नहीं। उसे टकटकी लगाये देखता रहा। घंटी की पुरानी बातें याद करके वह कँपने लगा। कुछ देर बाद जापानी बोला—

जापानी। "आपके पास यह घंटी कब से है ?"

स्काट। "तीन चार महीने से।"

जापानी। "क्या आपने कभी कोई खास बात इसमें देखी है ?"

स्काट थोड़ी देर चुप रहे। उनका मन जापानी के आन्तरिक भाव जानने के लिए उद्विग्न हो गया। अन्त को उन्होंने कहा।

स्काट। "हाँ, देखी है।"

जापानी। "इस घंटी की पाँचवीं कलसी को आपने आप ही आप बजते सुना है ?"

स्काट ने इस बात को दबी जबान से स्वीकार किया। जापानी ने एक लंबी साँस ली, और कई बार अपने हाथों को खोला और मीचा। अन्त को उसने कहा—

जापानी। "क्षमा कीजिए, मैंने आपसे इतनी बातें पूछीं। अब केवल एक बात पूछनी है। क्या आप यह घंटी किसी मित्र को प्रसन्नतापूर्वक देने के लिए उद्यत हैं ?"

स्काट। "नहीं, मुझे खेद है मैं इसे नहीं दूँगा। मेरी पत्नी ने यह घंटी मुझे उपहार दी है।"

जापानी। "तब बहुत अधिक कीमत पाने पर भी आप देना स्वीकार न करेंगे ?"

स्काट। "कदापि नहीं"। कुछ देर चुप रहने के बाद "क्या आप इस घंटी के विषय में जो कुछ जानते हैं, मुझे बतावेंगे ?"

जापानी। "मैं इस घंटी के लिए आप से अब कभी प्रार्थना न करूँगा। परन्तु क्या आप यह बता सकते हैं कि आपकी स्त्री ने इसे कहाँ से खरीदा था। वहाँ से शायद मुझे इस तरह की दूसरी घंटी मिल सके।"

स्काट। "मैंने इस बात की जाँच कर ली है। इस किस्म की दूसरी घंटी उस दुकान पर नहीं है। क्रेन्सन गली में जो बूढ़े वेगनर की दुकान है वहाँ आप दरयाफ्त कर सकते हैं।"

(२)

दूसरे दिन शाम के वक्त, स्काट को फिर अपने कमरे में जाने की जरूरत हुई। वसन्त ऋतु का आरम्भ था। ठंढी ठंढी हवा चल रही थी। इन्होंने कमरे की एक खिड़की खोलकर परदा ऊँचा कर दिया और खिड़की के पास आराम-कुरसी पर लेट गये। कमरा बिजली की रोशनी से जगमगा रहा था। मेज पर बहुत-सी चिट्ठियाँ रखी थीं, जिनको उठा उठाकर ये पढ़ रहे थे। ज्योंही अखीर की चिट्ठी उठाने के लिए इन्होंने हाथ बढ़ाया—

टन्‌न्‌न—एक, टन्‌न्‌न—दो, टन्‌न्‌न—तीन, टन्‌न्‌न—चार, टन्‌न्‌न—पाँच, टन्‌न्‌न—छे, टन्‌न्‌न—सात, दफे बोलकर घंटी शान्त हो गई।

रात भर इनको नींद नहीं आई। बिछौने पर बेचैनी से रात कटी। सुबह जलपान के समय जब स्त्री-पुरुष मेज पर बैठे, मेरी ने आहिस्ते से पूछा—

मेरी। "क्या आप उस घंटी को सचमुच रखा चाहते हैं ?"

स्काट कँप उठे। उस कम्बख्त घंटी ने तो उनकी जान आफत में डाल रखी थी।

स्काट। "क्यों ?"

"मेरी। "आपको स्मरण होगा, मैंने आपसे कहा था कि वह घंटी मैंने उस बूढ़े दुकानदार वेगनर से खरीदी थी। कल उसने मुझे रुक्का भेजा है कि वह उस घंटी के लिए ५०० रुपया देने को तैयार है। शायद उसे घंटी की असली कीमत मालूम हो गई है। इससे वह उसको वापस लेना चाहता है। मुझे ५०० रुपया मिलने से मैं उसे दीन दुखियों को दान कर दूँगी।

मेरी ने थोड़ी देर ठहर कर फिर कहा—

मेरी। "क्यों प्यारे, आपने मेरी बात का उत्तर न दिया।"

स्काट। "प्रिये, उस घंटी के बेचने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हें दान के लिए जो रुपया चाहिए मैं दूँगा।"

दूसरे दिन वेगनर ने एक और चिट्ठी भेजी और बड़ी नम्रता से घंटी वापस माँगी। वह उसके लिए पाँच हजार रुपया देने को उद्यत हो गया। मेरी ने उस चिट्ठी को पति को दिखाया। उन्होंने उसे फाड़ कर फेंक दिया और कर्कश स्वर से कहा—

स्काट। "मैं उस घंटी को पाँच लाख लेकर भी न बेचूँगा।"

एक रोज सुबह जो ये अपने दफ्तर पहुँचे तो मेज पर चिट्ठियों तथा आवश्यक कागजों का ढेर लगा पाया। लाचार किसी तरह से इन्होंने काम शुरू किया। अभी थोड़ी देर ही काम करते हुई थी कि टेलीफोन की घंटी बजी। उसे सुन स्काट चिल्लाकर अपनी जगह से उठ खड़े हुए। मगर जब देखा कि यह उनके टेलीफोन की घंटी है तब फिर बैठ गये।

शाम को इन्होंने अपने डाक्टर को बुला भेजा। डाक्टर हट्टा कट्टा फ्रांसीसी जवान था। उसकी बाबत यह मशहूर था कि उसके हँसने से बहुत से बीमार तन्दुरुस्त हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उसका रोजगार बहुत चलता था। डाक्टर साहब आये और स्काट को देखते ही मुसकराते हुए बोले।

डाक्टर। "हेलो स्काट! क्या आज्ञा है ?"

स्काट। "हाथ पैर काँपते रहते हैं।"

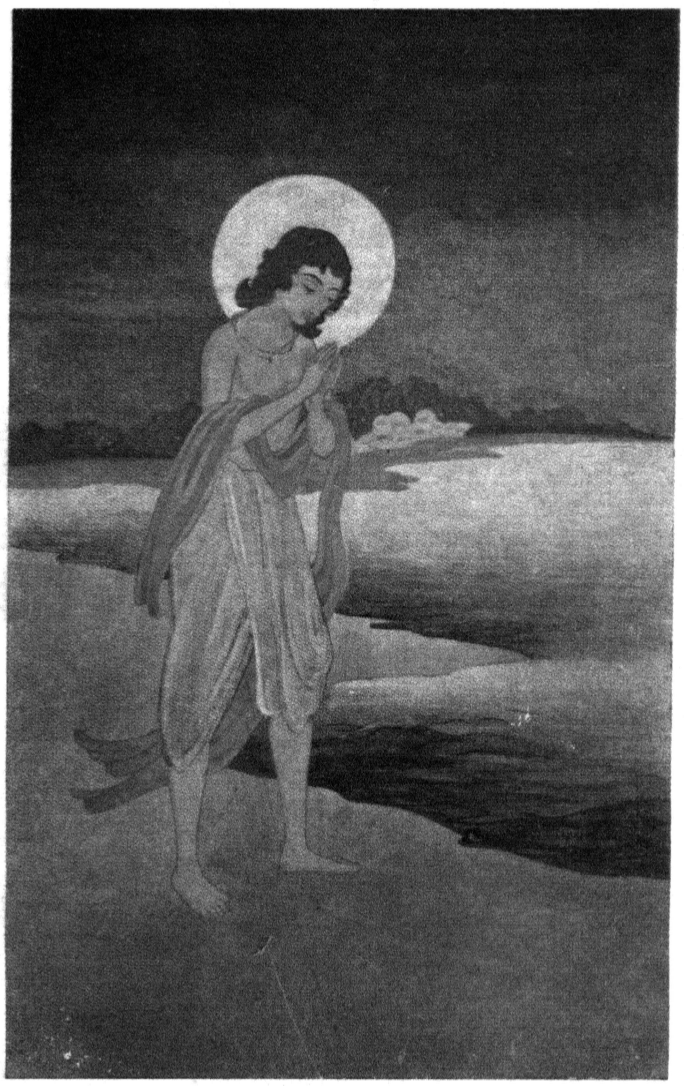
डाक्टर। "मैं जानता था कि आपको यह शिकायत होगी। दिन रात कल की तरह काम (जरा मुसकराकर); दिन रात मुँह में चुरुट; भला कमजोरी क्यों न हो ?"



गणेशजी

(प्राचीन चित्र)

[१६१७



श्री गौरांग का गृहत्याग
(चित्रकार–शैलेन्द्रनाथ दे) [१६२३

स्काट। "इसके कारण ये बातें नहीं। कारण है चिन्ता, चिन्ता, चिन्ता—"

डाक्टर ने नाड़ी देखी और कहा।

डाक्टर। "क्या बात है, साफ साफ बयान कीजिए?"

स्काट (लम्बी साँस लेकर) "डाक्टर! बात क्या है जादू है—जादू। मुझे एक बात की हमेशा चिन्ता लगी रहती है। क्या कहूँ कुछ कहते नहीं बनता।"

"मैं सदा इस घंटी के शब्द की राह देखा करता हूँ। इसी चिन्ता में हमेशा रहता हूँ। न मुझे रात चैन है न दिन। इसी का स्वप्न देखता रहता हूँ। बात करता हूँ औरों से, ध्यान रहता है इसका। इस समय बातें आपसे करता हूँ, पर मन इसमें है। अब बजी, अब बजी!"

डाक्टर ने इनकी बातें ध्यान से सुनीं और इनका हाथ पकड़ कुरसी पर बिठाया।

डाक्टर। "आप बच्चों की सी बातें करते हैं।"

स्काट ने हाथ मेज पर मार कर कहा—

स्काट। "डाक्टर साहब, आप जरा सुनिए तो। मेरे पास प्रमाण हैं। आप मुझे पागल न समझिए।"

डाक्टर (गम्भीर भाव से)—"अच्छा बतलाइए क्या बात है?"

इस पर, ठहर ठहर कर, धीरे धीरे, स्काट ने घंटी की सारी बातें कह सुनाईं। भय, शंका, हैरानी इनके चेहरे पर छाई थी। बात करते वक्त इनके होंठ कँपते थे। डाक्टर ने ध्यान से इनकी कथा सुनी और कई बार सिर हिलाया। स्काट ने अपनी रामकहानी पूरी करके जोर से कहा—

स्काट। "घंटी में अवश्य कोई जादू है। उसके सिवा कोई कारण इसके बजने का नहीं। आप मेरी बात पर विश्वास कीजिए।"

डाक्टर कुछ देर तक चुप रहे; फिर बोले—

डाक्टर। "क्या आप यह निश्चय जानते हैं कि आपकी स्त्री ने घंटी को उस बूढ़े जरमन की दूकान से खरीदा है?"

स्काट। "निश्चय। भला इससे बढ़कर और प्रमाण क्या हो सकता है कि उसने कई चिट्ठियाँ भेज कर उसे खरीदना चाहा है।"

डाक्टर ने कमरे में जाकर घंटी को अच्छी तरह देखा भाला। कोई बात उसकी भी समझ में न आई। आखिरकार आपने कहा—

डाक्टर। "आपको छ महीने यूरप की सैर करनी चाहिए। एक बात और है। या तो आप इस घंटी को बेच डालें या इस मकान में न रहें।"

डाक्टर साहब अपनी फीस लेकर अपने घर गये। स्काट दूसरे दिन अपने दूसरे मकान में, जो पास ही था, जा रहे।

दूसरे रोज सुबह एक अजनबी आदमी, उस छोटे कमरे में जहाँ घंटी लटक रही थी, मरा हुआ पाया गया। उसकी लाश देखने से मालूम होता था कि किसी ने उसे बन्दूक से मारा है।

जब इसकी खबर स्काट को मिली तब वे और उनकी स्त्री उसे देखने आये। पहले मेरी उस कमरे के अन्दर घुसी और लाश को देखते ही चिल्ला उठी।

मेरी। "हैं, यह तो वेगनर की लाश है जिससे मैंने घंटी खरीदी थी। (अपने पति को मुखातिब करके) आपने देखा?"

स्काट हैरान, परेशान। काटो तो बदन में पसीना नहीं! क्या बात है? वेगनर को क्यों घंटी की इतनी जरूरत हुई? इसको किसने मारा? घंटी में क्या जादू और तिलस्म है? यही प्रश्न इनके मन में उठ रहे थे। इतने में इनकी आँखें जो पाँचवीं कलसी पर पड़ीं तो इनके रहे सहे होश भी जाते रहे, और चिल्लाकर जमीन पर गिर पड़े।

(३)

एक उमदा हवादार कमरे में एक बड़ी सी मेज रक्खी है। उस मेज पर तरह तरह की शीशियाँ धरी हैं; कोई बड़ी है, कोई छोटी; किसी का मुँह टेढ़ा है, किसी का सीधा। मेज के एक ओर खुर्दबीन यन्त्र रक्खा है और उसी के पास वैज्ञानिक जाँचों और तजरुबों के लिए बहुत सा सामान है।

कमरे के उत्तरी भाग में जो अलमारी है उसके सामने एक दुबला पतला आदमी खड़ा है। वह अमरीका का रहने वाला है। उसके हाथ में रसायन की एक शीशी है

मालूम होता है कि वह कोई प्रयोग कर रहा है। आप शिकागो के प्रसिद्ध विद्वान् आगस्टस हैं।

शिकागो के समाचारपत्रों में आपका नाम "सोचने की कल" (Thinking Machine) प्रसिद्ध है। कोई बात असम्भव से असम्भव क्यों न हो, उनके पास जाकर वह कार्य्यकारणभाव के सिद्धान्तों से सिद्ध हो जाती है। इसलिए आपके पास विद्वान् लोग कठिन समस्यायें लेकर पहुँचा करते हैं। हम आपको "सोचने की कल" न कह कर "तीक्ष्णबुद्धि" के नाम से पुकारेंगे।

तीक्ष्णबुद्धि ने शीशी को मेज पर रक्खा ही था कि दरवाजे से खटखट की आवाज आई। इन्होंने जाकर दरवाजा खोला।

"कहो मिस्टर हेच! क्या हाल चाल है?" कह कर तीक्ष्णबुद्धि ने आगन्तुक का हाथ बड़े प्रेम से पकड़ा और कुरसी पर ला बिठाया।

हेच (जरा संकोच से)। "मैंने आपके काम में विघ्न डाला।"

तीक्ष्णबुद्धि। "यह तो आप जानते ही हैं कि यहाँ हमेशा काम ही काम है। अगर कोई मिलने न आवे तो शायद अधिक काम से मेरी तबीयत बिगड़ जाय।"

हेच (मुसकराकर)। "यह आपकी महानुभावता है।"

मिस्टर हेच शिकागो के एक दैनिक-पत्र का रीपोर्टर था। ६ फुट लम्बा, मजबूत, नौजवान, सुन्दर सुडौल चेहरा, न दाढ़ी, न मूछ। रूप रंग दर्शनीय था। स्काट साहब के यहाँ जो लाश सुबह देखी गई थी, उसकी शहर में बड़ी चर्चा थी। सो मिस्टर हेच, तीक्ष्णबुद्धि से उसके विषय में पूछ पाछ करने आये थे।

हेच ने तीक्ष्णबुद्धि से सब हाल कह सुनाया। परन्तु हेच साहब को घंटी के बजने की बात न मालूम थी। उसने कहा:—

"घंटी के ऊपर जो खून का चिह्न है वह, सम्भव है, किसी के हाथ लगाने से हुआ हो; परन्तु इसका सबूत नहीं मिलता। खुफिया पुलिस ने पता लगाया है कि वेगनर चोरी का माल खरीदा और बेचा करता था, और स्काट का एक नौकर, चारली, भाग गया है। रात के ग्यारह बजे तक वह मकान में था। उसके बाद उसका पता नहीं। उसके सब कपड़े लत्ते उसके सोने के कमरे में हैं। केवल जूते, पायजामा और कुरते का पता नहीं।"

तीक्ष्ण-बुद्धि ने ये सब बातें बड़े ध्यान से सुनीं। कुछ देर तक वे एक बड़ी आराम कुरसी पर चुपचाप बैठे रहे। अनन्तर आपने फरमाया:—

"यदि वेगनर की छाती में गोली लगी है तो उसकी मृत्यु तत्क्षण हुई होगी। वह घंटी पर कोई चिह्न न बना सका होगा। परन्तु प्रश्न यह है कि वह चिह्न किसने किया?"

मिस्टर हेच। "खुफिया पुलिस का तो खयाल है—"

तीक्ष्ण-बुद्धि ने बात काट कर कहा—"खुफिया पुलिस को जाने दीजिए। यह बतलाइए कि वह लाश किस समय पाई गई थी?"

हेच। "कल, सुबह, साढ़े नौ बजे।"

तीक्ष्ण-बुद्धि। "कोई चीज चोरी गई है?"

हेच। "कुछ नहीं। वहाँ लाश पड़ी थी। एक खिड़की खुली थी। दरवाजे पर ताला लगा हुआ था और घंटी पर लोहू का निशान था।"

तीक्ष्ण-बुद्धि (छत की ओर देखते हुए)—"इस मामले की बाबत स्काट की क्या राय है?"

हेच। "वे बीमार हैं। पर क्या बीमारी है, मुझे मालूम नहीं। डाक्टर परदू ने पुलिस से कह दिया कि स्काट से कोई पूछ पाछ अभी न की जाय।"

वैज्ञानिक ने जल्दी से पूछा—

"क्यों, स्काट को क्या हुआ है?"

हेच। "मुझे मालूम नहीं। डाक्टर ने मुझसे कुछ नहीं बतलाया।"

आध घंटे बाद तीक्ष्ण-बुद्धि और हेच स्काट के मकान पर पहुँचे। डाक्टर परदू उनको घर के बाहर मिले। डाक्टर और तीक्ष्ण-बुद्धि ने बड़े प्रेम से हाथ मिलाये। तीनों आदमी अन्दर पधारे।

वह जापानी घंटी वहीं लटक रही थी। लघुकाय वैज्ञानिक उसके पास जाकर ध्यान से उसे देखने लगे। पाँच

मिनट तक चुपचाप पाँचवीं कलसी की परीक्षा की। हेच साहब उनके चेहरे से कुछ भी न जान सके कि वैज्ञानिक महाशय के मन में क्या क्या गुजर रहा है। हेच के मन में बुलबुले उठ रहे थे कि यह रक्त का चिह्न क्या किसी के हाथ की करामात है? है तो किसके हाथ की?

पाँचवीं कलसी की अच्छी तरह परीक्षा करके तीक्ष्ण-बुद्धि ने कमरे में इधर उधर देखा और पूर्व की खिड़की खोल दी। बड़ी देर तक वे चुपचाप खिड़की की ओर मुँह करके खड़े रहे। यह कमरा दूसरी छत पर था। तीक्ष्ण-बुद्धि ने डाक्टर से पूछा:—

"क्या यह पश्चिम की खिड़की कभी खोली जाती है?"

डाक्टर। "कभी नहीं। कारण यह है कि इस तरफ रसोईघर होने से वहाँ पकने वाली चीजों की गंध आने का डर रहता है।"

तीक्ष्ण-बुद्धि। "बाहर निकलने के कितने दरवाजे इस मकान में हैं?"

डाक्टर। "केवल दो। एक वह, जिससे हम आप आये हैं; दूसरा रसोई घर की तरफ, ठीक इस कमरे के नीचे से।"

तीक्ष्ण-बुद्धि। "क्या कल ये दोनों बन्द थे?"

डाक्टर। "हाँ। दोनों दरवाजे ऐसे हैं कि बन्द करते ही ताला लग जाता है।"

तीक्ष्णबुद्धि (जोर से)। "अच्छा!"

वैज्ञानिक खिड़की से हटकर फिर घंटी के पास गया और दुबारा उस आश्चर्य-जनक घंटी की परीक्षा की। उसको यह भासित होने लगा कि इस घंटी का वेगनर की मृत्यु के साथ गहरा सम्बन्ध है।

तीक्ष्ण-बुद्धि—"डाक्टर महाशय, आप यह बतलाइए कि लाश कहाँ पर थी?"

डाक्टर (खिड़की के पास जाकर)—"ठीक यहाँ पर।"

तीक्ष्णबुद्धि ने उस फासले को मापा, और, फिर, थोड़ी देर बाद कहा:—

"अब प्रश्न यह है कि क्यों उसने दरवाजे को ताला लगा दिया और आप भग गया?"

हेच (शीघ्रता से) "किसने लगा दिया—कौन भग गया?"

वैज्ञानिक चुप रहा। उसने फिर कमरे को अच्छी तरह देखा भाला और आखिर को डाक्टर से कहा:—

"अच्छा डाक्टर साहब, अब आप बताइए कि स्काट साहब का क्या हाल है?"

डाक्टर (घबरा कर)। "कई बातें अभी आपको नहीं बताई गई हैं और उनके न बताने का खास कारण है।"

"बहुत ही अच्छा हो यदि आप इस बात को स्काट के मुँह से सुनें। आइए, मुझे आशा है कि वे प्रसन्नता-पूर्वक बतला देंगे।"

स्काट ने अपनी दशा के कारण की गाथा बड़ी खुशी से कह सुनाई। कहते समय वे बार बार वैज्ञानिक के चेहरे की ओर देखते थे और जानना चाहते थे कि उस पर कैसा असर होता है। वैज्ञानिक का चेहरा भी उस समय देखने काबिल था। कभी आश्चर्य, कभी संतोष, कभी विस्मय, कभी मुसकराहट उनके चेहरे से झलकती थी। जब स्काट अपनी राम-कहानी कह चुके तब तीक्ष्ण-बुद्धि ने कहा:—

'अब मुझे मालूम हो गया कि वह आदमी क्यों भग गया।"

पर वैज्ञानिक के साथियों ने उसका कुछ भी अर्थ न समझा। वैज्ञानिक ने स्काट से फिर पूछा:—

मैं समझता हूँ कि जब आपने घंटी की टन टन सुनी, पूर्व की खिड़की खुली थी।

स्काट। "हाँ, जहाँ तक मुझे याद है, पूर्व की खिड़की खुली थी।"

तीक्ष्णबुद्धि। "और खिड़की के खोलने पर क्या घंटी हमेशा बजा करती थी?"

स्काट। "नहीं, कई बार ऐसा हुआ है कि खिड़की खुली है, मगर घंटी नहीं बजी"। वैज्ञानिक के चेहरे पर घबराहट के चिह्न देख पड़े। कुछ सोच-विचार के बाद उन्होंने स्काट से कहा:—

"अच्छा, तो पहले जो आपने घंटी की टन टन सुनी थी क्या वह दो बार ठहर ठहर कर हुई थी, अर्थात् पहले एक टन टन का शब्द फिर, कुछ सैकंड बाद, दूसर का?"

स्काट। "हाँ।"

तीक्ष्ण-बुद्धि। "और यह घंटी दो तीन महीने से आपके पास है?"

स्काट। "हाँ, तीन महीने से।"

तीक्ष्ण-बुद्धि। "मौसम जाड़े का था? शरद ऋतु का अन्त और वसन्त का आरम्भ?"

स्काट। "प्रायः शरद ऋतु थी। मुझे याद पड़ता है कि पहली बार जब मैंने घंटी का शब्द सुना तब वसन्त का आरम्भ था। उसी दिन मैंने खिड़की खोली थी।"

तीक्ष्ण-बुद्धि। "आपने यह भी कहा था कि एक रात को आप ने दो दफे घंटी बजते सुना था। वह रात कैसी थी?"

स्काट। "उस रात को मुझे बहुत काम करना था। मैं उस छोटे कमरे में आधी रात तक बैठा काम करता रहा था।"

तीक्ष्ण-बुद्धि। "क्या आपको तारीख याद है?"

स्काट। "अच्छी तरह। उस दिन मंगलवार था; इस महीने की ग्यारहवीं तारीख।" (थोड़ी देर सोचकर) "मुझे बखूबी याद है, क्योंकि दूसरे दिन मैंने रेल की मंडी में कई वस्तुओं का मूल्य बढ़ाया था।"

वैज्ञानिक ने आखिर को कहा—"यह मुआमला मैं समझ गया हूँ। मगर अभी तक दो बातें मेरी समझ में नहीं आईं। यदि पहली बात का उत्तर "हाँ" में मिला, तो मैं कहूँगा कि इस घटना का कारण "जापानी दिमाग" है। यदि "न" में मिला तो फिर यह मुआमला बहुत ही साधारण है।"

स्काट ने उसके एक एक शब्द को बड़े ध्यान से सुना। सुनकर बोले:—

"आप यह बताइए कि घंटी कैसे बजी?"

तीक्ष्ण-बुद्धि। "मैं पहले उन दो बातों का उत्तर चाहता हूँ।"

स्काट। "क्या आप समझते हैं कि उस जापानी का इस घटना में कोई हाथ है?"

तीक्ष्ण-बुद्धि। अभी तक मैं कुछ नहीं कह सकता। मेरी यह आदत नहीं है कि मैं बिना पूर्ण विचार किये कोई निश्चय दृढ़ करूँ। जब मैं इस विषय को अच्छी तरह जान लूँगा तब आप से कहूँगा। अब मैं और मिस्टर हेच दोनों कुछ देर के लिए बाहर जाते हैं। दस मिनट के बाद हम आपके सब सन्देह दूर कर देंगे।

(४)

तीक्ष्ण-बुद्धि हेच साहब का हाथ पकड़कर फिर उस कमरे में गये जहाँ घंटी लटकती थी। हेच ने कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया, ताकि कोई तीसरा आदमी अन्दर न आवे। वैज्ञानिक ने तीसरी बार फिर घंटी की परीक्षा की; बार बार पाँचवीं कलसी पर चोट की; प्रत्येक बार अपनी नाक को उसके निकट ले जाकर सूँघा। हेच हैरान खड़ा था। वैज्ञानिक ने कई बार प्रयोग करने के बाद सिर हिलाया—जैसे अपनी परीक्षा का उत्तर "न" में मिला हो। हेच को साथ लेकर वह नीचे गली में चला गया।

हेच—(विस्मित होकर) "क्या सचमुच ही आपको उस घंटी के बजने का कारण मालूम हो गया है?"

तीक्ष्ण-बुद्धि—"मैंने जान लिया है कि क्या कारण है और यदि तुमने अब तक नहीं जाना तो आश्चर्य्य की बात है।"

उस गली के ठीक सामने थोड़ी दूर सड़क पर एक विशाल अट्टालिका थी। दोनों उसके अन्दर गये। तीक्ष्ण-बुद्धि ने वहाँ के प्रबन्धकर्त्ता के पास जाकर प्रश्न किया:—

"क्या इस महीने की ग्यारहवीं तारीख, मंगलवार की रात को, यहाँ कोई नाच तमाशा हुआ था?"

प्रबन्धकर्त्ता—"नहीं साहिब, यहाँ कभी कोई नाच तमाशा नहीं होता।"

"क्षमा कीजिए" कहकर तीक्ष्ण-बुद्धि प्रबन्धकर्त्ता के कमरे से निकलकर हेच के साथ मकान की दूसरी मंजिल पर गये।

एक बहुत बड़े लम्बे-चौड़े दीवानखाने में, जहाँ एक हजार से अधिक कुरसियाँ लगी हुई थीं, दोनों आदमी दाखिल हुए। तीक्ष्णबुद्धि ने न इधर देखा न उधर; सीधे एक खिड़की के पास पहुँचे। इस खिड़की से शहर का दृश्य उमदा तौर पर दिखाई देता था। खिड़की के सामने हवा

आने जाने के लिए उसी तरह की शीशेदार खिड़की उस बरामदे में भी थी जहाँ से स्काट साहब के मकान का सामना पड़ता था। तीक्ष्ण-बुद्धि ने अपनी घड़ी निकालकर मिनट की सुई को ढाई मिनट आगे कर दिया। फिर इस खिड़की से दूसरी खिड़की तक, अर्थात् दीवानखाने की एक तरफ से दूसरी तरफ तक, फेरा किया। अन्त को बिना कुछ कहे हेच के साथ मकान के नीचे उतर आये।

हेच के मन में प्रश्न पर प्रश्न उठ रहे थे; परन्तु वह चुप रहा और वैज्ञानिक के साथ स्काट के मकान पर पहुँचा। डाक्टर परदू और स्काट का लड़का टामी दोनों इनको मकान में घुसते ही मिले। वैज्ञानिक को देखते ही डाक्टर की जान में जान आ गई।

डाक्टर—"मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ कि आप शीघ्र आ गये। यहाँ एक और गुल खिला है।" यह कह कर उसने एक बड़ा लिफाफा तीक्ष्णबुद्धि को दिखाया और कहा—"पुस्तकालय में आइए।"

सब लोग पुस्तकालय में गये। डाक्टर ने दरवाजा बन्द करके धीरे से वैज्ञानिक से कहाः—

"थोड़ी ही देर हुई है, टामी को यह लिफाफा डाक में मिला है। इसके भीतर यह दूसरा लिफाफा था। टामी इसे अपने पिता को दिखाने जाता था, मगर मैंने रोक दिया, क्योंकि"—

तीक्ष्णबुद्धि ने लिफाफा अपने हाथ में लेकर उसे अच्छी तरह देखा। सफेद कागज का साधारण लिफाफा था। उसपर छोटे छोटे अक्षरों में लिखा हुआ थाः—

"To be opened when the fifth bell rings eleven times."

"उसी समय खोलना जब पाँचवीं कलसी ग्यारह दफे बजे।"

तीक्ष्णबुद्धि ने उस नवयुवक से पूछा—टामी! तुम ये दस्तखत पहचानते हो?

टामी—"नहीं।"

तीक्ष्णबुद्धि—"सोचो, शायद तुम्हारे किसी दोस्त के हों।"

टामी—"मैं नहीं पहचानता।"

तीक्ष्णबुद्धि—(मुसकरा कर) यदि तुम नहीं पहचानते तो मैं तो अवश्य ही पहचानता हूँ। यह माल्मूमी का लिखा हुआ है।" डाक्टर की ओर देख कर, "और इसमें इस घंटी की घटना का मर्म है। इस लिफाफे के आ जाने से मुझे अपनी बात का पूरा निश्चय हो गया है।"

टामी—(जरा जोर से) "नहीं साहब, आप भूल करते हैं। इस लिफाफे की मोहर देखिए यह क्लीवलेंड (Cleveland) से आया है।"

तीक्ष्णबुद्धि—"इससे यह मालूम होता है कि वह गिरफ्तारी के डर से भागा फिरता है।"

हेच—(शीघ्रता से) "तब माल्मूमी ही ने वेगनर को मारा है।"

तीक्ष्णबुद्धि—"मैं अभी ठीक नहीं कह सकता; पर घंटी की घटना तो यही बताती है।"

इतने में फौरन दरवाजा खुला और स्काट की स्त्री मेरी ने अन्दर आकर डाक्टर से कहाः—

"कृपा कर शीघ्र आइए, उनकी हालत बहुत बिगड़ रही है।"

डाक्टर ने तीक्ष्णबुद्धि की ओर देखा और कहा—"वैज्ञानिकवर! यदि आप घंटी के विषय में कुछ जानते हैं तो कृपा कर फौरन ही भेद खोल दीजिए। इससे अच्छा अवसर नहीं मिलेगा। स्काट को जीवनदान दीजिए।"

तीक्ष्णबुद्धि—(मेरी से) "क्या उनको होश है?"

मेरी—(सिर हिलाकर) "नहीं, मैं उनसे बातें कर रही थी। अचानक वे उठकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद बड़े जोर से चीख मारी और बेसुध होकर बिछौने पर गिर पड़े। तब से होश नहीं है।"

डाक्टर परदू को साथ लेकर मेरी और टामी स्काट के कमरे में गये। तीक्ष्णबुद्धि ने अपनी घड़ी की ओर देखा। इस समय चार बजकर साढ़े तीन मिनट हुए थे। उसने हेच की ओर मुँह करके कहा।

"कृपा कर उस छोटे कमरे में जाकर उसकी खिड़की बन्द कर दो। स्काट ने उस घंटी को फिर बजते सुना है। इसी लिए उनकी यह दशा हुई है। इस लिफाफे को

अपनी जेब में रख लो।" लिफाफे को हेच के हाथ में उसने दे दिया।

रात के साढ़े नौ बजे हैं। उस छोटे कमर में, जहाँ जापानी घंटी लटक रही थी, स्काट, डाक्टर परदू, तीक्ष्ण-बुद्धि, टामी और हेच उपस्थित थे। चार घंटे तक डाक्टर परदू और वैज्ञानिक ने स्काट को होश में लाने का यत्न किया, मगर निष्फल हुआ। राम राम करके बड़ी देर बाद स्काट को होश हुआ।

वैज्ञानिक ने धीरे से कहा:—

"स्काट साहब! मेरे कहने से ये सब लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं। मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि घंटी के बजने का कारण क्या है और साथ ही और रहस्य भी प्रकट करना चाहता हूँ। अच्छा, यदि मैं आपको यह बतला दूँ कि घंटी फलाने वक्त इतनी दफे बजेगी, और वह ठीक उसी समय उतनी दफे बजे, तो आपको अवश्य ही निश्चय हो जायगा कि मैं इसका कारण जानता हूँ।"

स्काट—"बेशक।"

तीक्ष्णबुद्धि—"और, फिर, मैं यदि आपको उसके बजने के कारण की सत्यता साबित कर दूँ तो आपकी तसल्ली हो जायगी या नहीं?"

स्काट—"हाँ जरूर हो जायगी।"

"बहुत अच्छा" कहकर तीक्ष्णबुद्धि ने हेच को संबोधन किया:—

"मिस्टर हेच, ऋतुसूचक दफ्तर के मैनेजर को टेली-फोन करके पूछो कि वेगनर की लाश मिलने से पहले रात को क्या आँधी आई थी या बिजली चमकी थी। उससे वायु की गति और वेग भी मालूम करो। यद्यपि मुझे मालूम है कि उस रात बादल घिरे थे; बिजली चमकी थी, मगर आप भी दरियाफ्त करके निश्चय कर लीजिए। और कृपा करके कहीं से एक सारंगी और पतला काँच का गिलास भी मँगवाइए।"

घर में एक सारंगी थी। टामी शीघ्र जाकर उसे ले आया। पाँच-छः मिनट बाद हेच भी आ गया। उसने वैज्ञानिक को बतलाया कि वायु पुरबिया, वेग चार मील प्रति घंटा है। उस रात को बारह बजे के करीब आँधी आई थी और बिजली भी चमकी थी।

वैज्ञानिक ने यह सब सुन कर स्काट से कहा:—"लीजिए, हम आपका भ्रम दूर करते हैं। तेंतीस मिनट और पैंतालीस सैकण्ड बीतने पर यह घंटी दस दफे टनटन करेगी।

स्काट साहब कुर्सी पर बैठे चुपचाप सुनते रहे। वैज्ञानिक ने फिर कहा:—

"इस बीच में मैं आपको दूसरी बातों के कारण बतलाता हूँ जो आपके मकान में हुई हैं। यद्यपि वे सब मेरे विचार का परिणाम हैं, परन्तु मुझे पूरा निश्चय है कि मैंने उनके समझने में भूल नहीं की है। और जब मैं आपके सामने उनका वर्णन करूँगा तब आप खुद भी मेरे साथ सहमत होंगे।"

"देखिए, एक आदमी यहाँ गोली से मारा गया। उस आदमी की यहाँ इस घर में उपस्थिति ही चोरी का चिह्न है। खिड़की का खुला रहना बतलाता है कि चोर किस प्रकार अन्दर आया।"

"कलसी पर जो लोहू का चिह्न है वह मनुष्यकृत है। इसमें कोई सन्देह नहीं। मगर जो आदमी गोली से मारा गया है वह तत्क्षण मरा है; उसने यह चिह्न नहीं किया। इससे यह पता लगता है कि यहाँ पर पहले ही से एक आदमी मौजूद था। बाहर के दरवाजे का ताला इस बात की पुष्टि करता है। मुझसे यदि कोई पूछे तो मैं कह दूँगा कि दरवाजे पर ताला पहले नहीं था। तो फिर किसने ताला लगाया? चोर ऐसा कर नहीं सकता, कि खिड़की से आने और गोली की आवाज पर इस दरवाजे से घर के अन्दर भागे। क्योंकि उसको मालूम है कि घर के लोग गोली की आवाज से जाग पड़े हैं। घर के किसी आदमी ने ताला लगाया है। पर किसने?"

"आपका नौकर चारली भग गया है। क्या उसने किसी चोर को यहाँ देखा था? नहीं, क्योंकि यदि वह देखता तो घर के लोगों को जरूर जगाता। तो फिर यह मामला क्या है? वह भग कहाँ गया? केवल एक बात हो सकती है। संभव है वह पुलिस को लाने गया हो और बाहर ही बाहर चोर के दूसरे साथी ने उसका काम तमाम कर दिया हो। परन्तु मुझे मालूम है कि वह पड़ा सोता था। अब सवाल यह है कि उसे जगाया किसने?"

तीक्ष्णबुद्धि थोड़ी देर चुप रहे; अपनी घड़ी को देखा; फिर पूर्व की खिड़की की ओर ताका। कुछ देर तक ठहर कर फिर आप बोले—

"मैं जानता हूँ कि यदि चारली को चोरों की आहट मिलती तो वह जरूर दूसरे नौकरों को जगाता। मगर वह जगा जरूर। अच्छा तो जगाया किसने ? बिजली ने। जगकर उसने क्या किया ? जब वह जगा उसे ध्यान आया कि पूर्व की खिड़की को मैंने सोते समय बन्द नहीं किया। इसलिए बिछौने से उठकर वह खिड़की बन्द करने इस कमरे में आया। ये सब बातें ठीक रात के बारह बजे के करीब हुईं। यहाँ इस कमरे में उसको वेगनर मिला जिससे उसने किसी तरह तमंचा छीन लिया और गोली चलाई।"

"इसके आगे चारली के बाकी काम जान लेना कठिन नहीं है। मुझे साफ मालूम होता है कि किस तरह चारली ने वेगनर के सीने पर हाथ रखकर देखा होगा कि आया वह मरा है या नहीं। इससे इसका हाथ लोहू से भर गया होगा। मगर उसने लोहू वाला हाथ पाँचवीं कलसी पर क्यों लगाया ? दरवाजे को ताला लगाकर गली में क्यों भाग गया ?"

"मैंने घंटी को अच्छी तरह देखा है; उसकी कलसियों पर निशान किये हैं। घंटी की धातु ऐसी कीमती नहीं है कि उसके लिए चोर यहाँ आवें। आपके कहने से मालूम होता है कि आपका नौकर क्यों डर कर भाग गया है। आदमी को मरा देख जब वह हैरान खड़ा होगा तब घंटी बोल उठी होगी। इसका असर उसपर ऐसा ही हुआ होगा जैसा आप पर हुआ है। है आदमी वह कायर। तिस पर ऐसा समय और घंटी का बारह दफे बजना। उसने घंटी को बन्द करने के लिए अपना हाथ पाँचवीं कलसी पर रक्खा होगा और भय से काँपता हुआ दरवाजा बन्द करके गली में भाग गया होगा। दरवाजे का ताला बन्द हो ही जाना चाहिए था क्योंकि उसकी बनावट ही ऐसी है। मगर चारली वापस आ जावेगा; क्योंकि वेगनर को मारने में उसने कोई कानून नहीं तोड़ा; जो कुछ किया अपने बचाव के लिए था।"

तीक्ष्णबुद्धि ने फिर अपनी घड़ी देखी। देखकर फिर इस तरह बोलेः—

"अच्छा, अब घंटी की कथा सुनिए। यह जापानी घंटी है और बहुत पुरानी है। मात्सूमा ने जो बातें यहाँ इसे देखकर की थीं, उनसे पता लगता है कि इसकी पूजा होती रही है। यह मंदिर में लटकती रही होगी, जहाँ इसके इस प्रकार बजने से हजारों अनपढ़ मूर्ख नर-नारी इसे दैवी शक्ति-सम्पन्न समझ इसके सामने माथा रगड़ते होंगे। मूर्खों के ठगने का यह बहुत अच्छा साधन रहा होगा। जापान से उसके गुम हो जाने के बाद मात्सूमी इसको यहाँ देखकर अवश्य ही हैरान हुआ होगा। उसने इसको खरीदने के कई ढंग निकाले। मगर आपने बेचने से बिलकुल इनकार ही कर दिया। वह वेगनर के पास गया; उसको बहुत लालच देकर घंटी चोरी करने के लिए आमादा किया। वेगनर, जैसा कि आप खुफिया पुलिस से सुन चुके हैं, पुराना पापी था। चोरी का माल बेचना उसका पेशा था। आपसे उसने घंटी के बारे में जो इनकार किया था वह इसलिए कि कहीं वह पकड़ा न जाय।"

डाक्टर परदू ने पूछा "मगर आप उस लिफाफे के विषय में क्या समझते हैं ?"

तीक्ष्णबुद्धि—(बेपरवाही से) "मैंने उसको खोल कर देख लिया है वह मुआमला दूसरा ही है।"

डाक्टर चुप रहा, हेंच ने अपनी जेब टटोली; लिफाफा वहीं था। तीक्ष्णबुद्धि अपनी कुर्सी से उठे; खिड़की की ओर देखा; और थोड़ी देर बाद हेंच से कहा—

"मिस्टर हेंच, आप कृपा करके उस मकान में जाइए जहाँ हम आप गये थे। उस बड़े दीवानखाने में जो दूसरी तरफ की खिड़की है उसे खोल दीजिए। इस तरफ की खिड़की भी खुली रहे। आप बीस मिनट तक दीवानखाने के बाहर खड़े रहें और किसी को अन्दर न जाने दें। बीस मिनट के बाद लौट आइए।"

हेंच बाहर चला गया। तीक्ष्णबुद्धि ने अपनी घड़ी निकाल कर वक्त देखा। फिर कागज पर कुछ लिखकर डाक्टर परदू को दे दिया। डाक्टर ने उस कागज को पढ़ा। लिखा थाः—

"स्काट से लिफाफे की बाबत कुछ न कहना।" तीन मिनट तक सब चुप रहे। फिर तीक्ष्णबुद्धि ने स्काट साहब से कहा—"ध्यान से सुनिएगा; तीन मिनट बाद घंटी बजेगी। एक मिनट ! दो मिनट ! तीन मिनट ! अब !"

टन! टन! टन! टन! टन! टन! टन! टन! टन! टन! दस बार आवाज करके घंटी शान्त हो गई। स्काट बेहद हैरान हुए। तीक्ष्णबुद्धि उनके चेहरे को देखकर हँसे। "अब तक नहीं समझे!" यह कहकर सारंगी और काँच का गिलास अपने सामने रखकर बोले।

"देखिए हम आपको समझाते हैं।"

वैज्ञानिक ने गिलास पर उँगली से चोट की। ग्लास से ध्वनि निकली। तब उन्होंने सारंगी से उसका सुर मिलाया। जब दोनों की ध्वनि-कम्पनायें एक हो गईं तब ग्लास और सारंगी में एक प्रकार का आकर्षण उत्पन्न हो गया। ज्यों ज्यों वैज्ञानिक सारंगी को छेड़ता गया ग्लास भी साथ-साथ गाता गया। पर काँच का पतला ग्लास उन ऊँची कम्पनाओं को सहन नहीं कर सकता था। इससे थोड़ी देर बाद वह चूर चूर हो गया।

विद्वान् वैज्ञानिक ने हँसकर स्काट से कहा—

"देखो प्रकृति के करिश्मे! कम्पन सब कम्पनाओं का खेल है। जैसे यहाँ पर सारंगी की कम्पनाओं से ग्लास में ध्वनि होने लगी थी उसी तरह इस घंटी में टन टन होता है। वह स्वर जिसके कारण घंटी बजती है आध मील के फासले पर पूर्व की ओर एक घड़ियाल से आता है।"

स्काट ने पहले टूटे हुए ग्लास की, फिर वैज्ञानिक की ओर देखा। सब बात उनकी समझ में आ गई। उनके चेहरे से जान पड़ता था जैसे कोई भारी बोझ उनके सिर से उतर गया हो। डाक्टर परदू ने वैज्ञानिक से पूछा:—

"यद्यपि खिड़की खुली रहती है मगर घंटी हमेशा नहीं बजती।"

तीक्ष्णबुद्धि—"घंटी उसी दशा में बजेगी जब उस हाल की दोनों आमने-सामने की खिड़कियाँ खुली होंगी और खास कर जब रात को जरा गरमी होगी। दूसरे हवा का रुख पूर्व का होना चाहिए, नहीं तो कम्पनाओं के आने में रुकावट होगी। उस हाल में आने-जाने वाले पुरुष भी हवा की सुग्राहक कम्पनाओं के आने में बाधा डाल सकते हैं।

स्काट साहब मुसकराये। उनके सारे भ्रम दूर हो गये। घंटी की करामात मालूम हो गई।

कुछ देर तक सब लोग बैठे बातचीत करते रहे ग्यारह बजे घंटी ने फिर आवाज दी।

इसके बाद स्काट से आज्ञा लेकर सब लोग अपने अपने घर की ओर रवाना हुए। रास्ते में डाक्टर ने उस लिफाफे की बाबत पूछा:—

डाक्टर—"आपने उस लिफाफे की बाबत कुछ नहीं बताया?"

तीक्ष्णबुद्धि—"आप क्यों उसके पीछे पड़े हैं। वह सब मासूमी की अविद्या का फल है। वह समझता है कि इस घंटी में कोई दैवी शक्ति है। इसीलिए वह ऐसे ऐसे खेल खेल रहा है।

दो दिन बाद स्काट साहब भले-चंगे हो गये। चौथे रोज दफ्तर गये। उनका नौकर चारली थोड़े दिन बाद वापस आ गया।

१९०८

❀ ❀ ❀

राखीबन्द भाई

श्री वृन्दावनलाल वर्म्मा

(१)

राजपूताना की दक्षिण-पश्चिम सीमा पर नागौर एक छोटा सा राज्य है। अकबर के शासनकाल में नागौर के राजा वहीं के एक निकटवर्ती दृढ़ किले में रहते थे। उस समय उत्तर के कुछ भीलों ने राज्य में बड़ी हलचल और बगावत मचा रक्खी थी। राजा ने भीलों को दबाने के लिए अपनी सब सेना इकट्ठी की। पास ही एक और रजवाड़ा था। उसका नाम राजपुर था। राजपुर में किला भी था। वहाँ के नौजवान और शूर-वीर राजा रुद्रसिंह